THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

मुनिश्रीअनन्तकीर्ति दि० जैनग्रन्थमालाका सप्तम पुष्प ।

नमः श्रीवीतरागाय ।

जैनसिद्धांतदर्पण ।

(७)

श्रीस्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी-न्यायवाचस्पति
स्व० पंडित गोपालदासजी बरैया, मोरेना
(ग्वालियर) द्वारा विरचित ।

प्रकाशिका—
मुनिश्रीअनन्तकीर्ति दि० जैनग्रन्थमाला समिति
बम्बई ।

माघ, वीर निर्वाण सं० २४५४

जनवरी, सन् १९२८ ई०

प्रथमावृत्तिः] [मूल्य ॥।)

प्रकाशक—
राजमल बड़जात्या,
मंत्री मुनिश्रीअनन्तकीर्ति,
दि० जैनग्रंथमाला समिति।
पो० भेलसा (ग्वालियर)।

मुद्रक
विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपिनियन प्रेस,
आंग्रेवाडी, गिरगांव—बम्बई।

प्रकाशकीय निवेदन ।

इस आवृत्तिमें दो विशेषताएँ हैं। पहिली यह कि पंडितजीका जीवन-चरित जोड़ दिया गया है । जिसे कि जैनहितैषी १३ वें वर्षके चौथे अंकमें उसके सम्पादक श्रीनाथूराम प्रेमीने लिखाथा। दूसरी यह कि पंडितजी इस भागमें जो कुछ बढ़ाना चाहते थे, वह यथा स्थान मिला दिया गया है । पंडितजीके हाथकी संशोधित कापी हमें जैनमित्र कार्यालयसे मिली और इस ग्रंथको छापनेकी आज्ञा दी, उनकी इस उदारताके लिये हम धन्यवाद देते हैं।

भवदीय–राजमल बड़जात्या, मंत्री ।

निवेदन ।

यद्यपि यह 'जैनसिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ पहले जब कि मैं जैनमित्रका सम्पादन करता था, प्रत्येक अंकमें क्रमशः छपता रहा है, उससमय जहाँतक बन सका और जितना जो कुछ भी 'जैनमित्र' में निकल सका, उतनेही अंशका नाम 'जैनसिद्धान्तदर्पण-पूर्वार्द्ध' नाम रखकर जैनमित्रकार्यालयके द्वारा पुस्तकाकारमें प्रकाशित हो चुका था, परन्तु अबतक वह अधूरा ही था, उसमें कितने ही पदार्थोंका विवेचन करना बाकी रह गया था, और कुछ न्यूनाधिकता करनेकी भी आवश्यकता थी, परन्तु उन पुस्तकोंके विकजानेके कारण जैनमित्रकार्यालयने मुझे पत्रद्वारा प्रेरित किया, और लिखा कि 'जैनसिद्धान्तदर्पणके द्वितीय संस्कणकी (दूसरे बार) छपनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, इसलिये आप इसमें हीनाधिकता करके और जिन बातोंकी इसमें त्रुटि रह गई, उनको पूर्ण करके इसको शीघ्र ही भेज दीजियेगा' इसलिये अब इसमें आकाश द्रव्यके निरूपणमें सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा और भूगोलकी मीमांसा की गई है, और कालद्रव्यका विशेष रूपसे वर्णन किया गया है, तथा और भी जहाँ कहीं हीनाधिकता करनी थी, सो भी कर दी गई है, अब भी जो कुछ इसमें त्रुटि रह गई हो, उसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ, इस संस्करणमें मुझको मेरे प्रियशिष्य महरौनी (झाँसी) निवासी पंडित वंशीधरने बहुत कुछ सहायता दी है जिसका मुझे अत्यन्त हर्ष है ।

विनीत-गोपालदास ।

विषय-सूची ।

	पृष्ठ
प्रस्तावना–	७
स्व० पं० गोपालदासजी	११
प्रथम अधिकार–	
लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप निरूपण	१
द्वितीय अधिकार–	
द्रव्यसामान्य निरूपण	३९
तीसरा अधिकार–	
अजीवद्रव्य निरूपण	११८
चौथा अधिकार–	
पुद्गलद्रव्य निरूपण	१३५
पाँचवाँ अधिकार–	
धर्म और अधर्मद्रव्य निरूपण	१५०
छठा अधिकार–	
आकाशद्रव्य निरूपण	१५९
सातवाँ अधिकार–	
कालद्रव्य निरूपण	१९४
आठवाँ अधिकार–	
सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा	२०९

नियमावली-मुनिश्रीअनन्तकीर्तिग्रंथमाला।

१ यह ग्रन्थमाला श्रीअनन्तकीर्तिमुनीकी स्मृतिमें स्थापित हुई है, जो दक्षिण कनड़ाके निवासी दिगम्बर साधु-चारित्रके तत्त्वज्ञानपूर्वक पालनेवाले थे, और जिनका देहत्याग श्री गो. दि. जैनसिद्धान्तविद्यालय मुरेना (गवालियर) में हुआ था।

२ इस ग्रन्थमाला द्वारा दिगम्बर जैन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थ भाषाटीका सहित तथा भाषाके ग्रन्थ प्रबंधकारिणी कमेटीकी सम्मतिसे प्रकाशित होंगे।

३ इस ग्रन्थमालामें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे, उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा, लागतमें ग्रन्थ सम्पादन कराई, संशोधन कराई, छपाई जिल्द बँधाई आदिके सिवाय आफिसखर्च, भाड़ा और कमीशन भी सामिल समझा जायगा।

४ जो कोई इस ग्रन्थमालामें रु. १००) व अधिक एकसाथ प्रदान करेंगे, उनको ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ विना न्योछावरके भेट किये जायँगे, यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयार कराईमें जो खर्च पड़े, वह सब देवेंगे, तो ग्रन्थके साथ उनका जीवनचरित्र तथा फोटोभी उनकी इच्छानुसार प्रकाशित किया जायगा। यदि कमती सहायता देंगे, तो उनका नाम अवश्य सहायकोंमें प्रगट किया जायगा। इस ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित सब ग्रंथ भारतके प्रान्तीय सरकारी पुस्तकालयोंमें व म्यूजियमोंकी लायब्रेरियोंमें व प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों व त्यागियोंको भेटस्वरूप भेजे जायँगे, जिन विद्वानोंकी संख्या २५ से अधिक न होगी।

५ परदेशकी भी प्रसिद्ध लायब्रेरियों व विद्वानोंको भी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मंत्री भेट स्वरूपमें भेज सकेंगे, जिनकी संख्या २५ से अधिक न होगी।

६ इस ग्रन्थमालाका सर्व कार्य एक प्रबंधकारिणी सभा करेगी, जिसके सभासद ११ व कोरम ५ का रहेगा, इसमें एक सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक मंत्री तथा एक उपमंत्री रहेंगे।

७ इस कमेटीके प्रस्ताव मंत्री यथासंभव प्रत्यक्ष व परोक्षरूपसे स्वीकृत करावेंगे।

८ इस ग्रन्थमालाके वार्षिकखर्चका बजट बन जायगा, उससे अधिक केवल १००) मंत्री सभापतिकी सम्मतिसे खर्च कर सकेंगे।

९ इस ग्रन्थमालाका वर्ष वीर संवत्से प्रारम्भ होगा, तथा दिवाली तककी रिपोर्ट व हिसाब आडीटरका जँचा हुआ मुद्रित कराके प्रतिवर्ष प्रगट किया जायगा।

१० इस नियमावलीमें नियम नं. १-२-३ के सिवाय शेषके परिवर्तनादिपर विचार करते समय कमसे कम ९ महाशयोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी।

प्रस्तावना ।

यह जीव अनादिकालसे अनादिबन्द्ध जड़कर्मके वशीभूत, अपने स्वाभाविक भावोंसे च्युत चतुर्गतिसम्बन्धी घोर दुःखोंसे व्याकुलित चित्त, मोहनिद्रामें निमग्न, पाप—पवनके झकोरोंसे कभी उछलता और कभी डूबता, विकराल अपार संसार—सागरमें वनमें व्याघ्रसे भयभीत मृगीकी नाईं, इतस्ततः परिभ्रमण कर रहा है । जबतक यह जीव निगोदादिक विकल चतुष्कपर्यन्त मनोज्ञानशून्य भवसमुद्रके मध्यप्रवाहमें अगृहीत मिथ्यात्वकी अविकल तरङ्गोंसे व्यग्र कर्मफलचेतनाका अनुभव करता हुवा स्वपरभेद-विज्ञान विमुख ज्ञानचेतनासे कोसों दूर, दुःखरूप पर्वतोंसे टकराता टकराता अपनी मौतके दिन पूरे करता फिरता है । तबतक ये प्रश्न उसको स्वप्नमेंभी नहीं उठते कि, मैं कौन हूँ ? मेरा असली स्वरूप क्या है ? मैं इस संसारमें दुःख क्यों भोग रहा हूँ ? मैं इन दुःखोंसे छूट सकता हूँ या नहीं ? क्या अबतक कोईभी इन दुःखोंसे छूटा है ? क्या इन दुःखोंसे छूटनेका कोई मार्ग बता सकता है ? इत्यादि विचार उत्पन्न होनेका वहाँ कोई साधनही नहीं है । दैवयोगसे कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय अवस्थाको प्राप्त होकरभी तिर्यञ्च तथा नरकगतिमें निरन्तर दुःख घटनाओंसे विह्वल होनेके कारण और देवगतिमें विषम विषसमान विषय भोगोंमें तल्लीनताके कारण आत्म—कल्याणके सन्मुख ही नहीं होता । मनुष्य भवमेंभी बहुतसे जीव तो दरिद्रताके चक्करमें पड़े हुए प्रातःकालसे सायंकालतक जठराग्निको शमन करनेवाले अन्नदेवताकी उपासनामेंही फँसे रहते हैं, और कितनेही लक्ष्मीके लाल अपनी पाणिगृहीत कुलदेवीसे उपेक्षित होकर धनललनाओंकी सेवाशुश्रूषामेंही अपने इस अपूर्वलब्ध मनुष्य जन्मकी सफलता समझते हैं । इतना होनेपर भी कोई कोई महात्मा इस मनुष्य शरीरसे रत्नत्रयधर्मका आराधनकरके अविनाशी

मोक्षलक्ष्मीका अपूर्व लाभ उठाकर सदाके लिये लोक शिखरपर विराजमान हो अमरपदको प्राप्त होते हैं । ऊपर लिखे हुए सब राग अलापनेका सारांश यह है, कि इस संसारमें भ्रमण करते करते यह मनुष्य जन्म बड़ी दुर्लभतासे मिला है । इसलिये इसको व्यर्थ न खोकर हमारा कर्तव्य यह है कि यह मनुष्यभव संसार—समुद्रका किनारा है, यदि हम प्रयत्नशील होकर इस संसार समुद्रसे पार होना चाहें, तो थोड़ेसे परिश्रमसे हम अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर सकते हैं । यदि ऐसा मौका पाकर भी हम इस ओर लक्ष्य न देंगे तो सम्भव है, कि फिर हम इस अथाह समुद्रके मध्य प्रवाहमें पड़कर डांवाडोल हो जाँय । संसारमें समस्त प्राणी सदा यह चाहते रहते हैं, कि हमको किसी प्रकार सुखकी प्राप्ति होवे, तथा सदा उसके प्राप्त करनेका ही उपाय करते रहते हैं । ऐसा कोईभी प्राणी न होगा जो अपनेको दुःख चाहता हो, इनकी जितनी भी इच्छा व प्रयत्न होते हैं, वे सब एक सुखकी प्राप्तिके लिये ही होते हैं । परन्तु ऐसा होनेपरभी जिस किसीसे भी पूँछा जाय, हरएकसे यही उत्तर मिलेगा कि संसारमें मेरे समान शायद ही कोई दूसरा दुःखी हो, संसारमें कोई भी ऐसा नहीं होगा, जिसे सब तरहसे सुख हो, इसका मूल कारण यह है, कि संसारमें दर असल सुख है ही नहीं । सुख वहीं है जहाँपर असुख कहिये दुःख यानी आकुलता नहीं है । संसारमें जिसको सुख मान रक्खा है, वह सब आकुलताओंसे घिरा हुआ है । सच्चा सुख मोक्ष होनेपर आत्मासे कर्मबन्धनके छूटनेपर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होनेमें है । क्योंकि जबतक यह जीव कर्मोंसे जकड़ा हुआ है तबतक पराधीन है और "पराधीन सपने सुख नाहीं" जबतक पराधीनता छोड़ स्वाधीनता आत्माका असली स्वभाव प्राप्त नहीं होता, तबतक सुख होवे तो, होवे कहाँसे ? इसलिये सच्चा सुख मोक्षमें है, और उसके होनेका उपाय पूर्वाचार्योंने यों बतलाया है कि "सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है । परन्तु इसका भी जानना जैनसिद्धान्तके रहस्य जाननेके

आधीन है। जैनसिद्धान्तके रहस्य जाने विना यह मोक्षके उपायोंको नहीं जान सकता है। किसी एक टापूमें बहुतसे जंगली आदमी रहा करते थे, जो कि इतने अज्ञान और भोलेभाले थे कि जरा सी भी अनोखी बातके होनेपर घवड़ा जाते थे, बिचारे दिनभर काम करते थे और सायंकाल होनेके पहले ही पहिल सो जाते थे, इसलिये अंधकारका नामभी नहीं जानते थे। एक दिन सर्वग्रासी सूर्यग्रहण पड़नेके कारण यहाँ दिनमेंभी चारों तरफ अंधकार व्याप्त हो गया, इसको देखकर वे लोग बहुत घबड़ाये और राजाके पास दौड़ते गए और चिल्लाने लगे। राजाने चिल्लाहटको सुनकर हाल दर्याप्त करनेपर फौजको लेजानेका हुक्म दिया, फौज इधर उधर दौड़ने लगी। वह विचारी क्या करती? अंधकार दूर न हुआ और वे फिरभी राजाके पास पहुँचे। राजाने और भी फौज ले जानेकी आज्ञा दी, वह भी जंगलोंमें आई और इधर उधर तोपगोला छोड़ने लगी, उसी फौजमेंसे कितनेही घोड़ा दौड़ाने लगे, कितनेही तलवार फिराने लगे, गरज यह कि सब अपने अपने हाथ दिखाने लगे। दूसरी बार उनके जानेपर राजा जंगलोंमें आया और उसके धकेलनेका प्रयत्न करने लगा परन्तु कुछभी न हो सका। इतनेमें कोई द्वीपान्तरका मनुष्य वहाँ होकर निकला और इस आन्दोलनका कारण पूँछा, पूँछनेसे उसे सब हाल मालूम हो गया। और उसने सबको आश्वासन दिया और धैर्य बँधाया और कहा, कि ये सब अभी हम दूर किये देते हैं। सुनते ही लोग राजाके पास इस संतोषप्रद समाचारको सुनानेके लिये दौड़े गये। राजाने सुनकर उसके पास जानेका इरादा किया और शीघ्रही आ पहुँचा और उससे अंधकार हटानेकी प्रार्थना की। राजाकी प्रार्थनाको सुनकर उस द्वीपान्तरमें रहनेवाले मनुष्यने तैल बत्ती दीपक वगैरह लानेके लिये कहा, सब सामानके आजानेपर उसने अपने जेबमेंसे पड़ी हुई दियासलाईको निकालकर दीपक जला प्रकाश कर दिया। जिससे कि वहाँका अंधकार दूर होगया। ठीक इसही तरह समस्त संसारके प्राणी अज्ञानरूपी अंधकारसे व्याकुलित हुए इधर उधर दौड़ धूप मचाते हैं। परन्तु सच्चे सुखका रास्ता

नहीं पाते। विना जैनसिद्धान्तके रहस्यके जाने यह जीवोंका अनादि कालसे लगा हुआ अज्ञानांधकार दूर नहीं हो सकता है। यद्यपि जैनसिद्धान्तका रहस्य प्रगट करनेवाले वड़े वड़े श्रीकुंदकुंदाचार्य समान महाचार्य आदि महर्षियोंके वनाये हुए अव भी अनेक ग्रन्थ मौजूद हैं। परन्तु उनका असली ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य जरूर है। इसलिये जिस तरह सुचतुर लोग जहाँपर कि सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच सकता। वहाँपर भी वड़े वड़े चमकीले दर्पण आदिके पदार्थोंके द्वारा रोशनी पहुँचाकर अपना काम चलाते हैं। उसही तरह उन जैन-सिद्धान्तोंके पूर्ण प्रकाशको किसी तरह इन जीवोंके हृदय-मंदिरमें पहुँचा-नेके लिये जैनसिद्धान्तदर्पणकी अत्यन्त आवश्यकता है। शायद आपने ऐसे पहलदार दर्पण (शैरवीन) भी देखे होंगे। कि जिनके द्वारा उलट फेरकर देखनेसे भिन्न भिन्न पदार्थोंका प्रतिभास होता है। उसहीं तरह इस जैनसिद्धान्तदर्पणके भिन्न भिन्न अधिकारोंद्वारा आपको भिन्न भिन्न प्रकारके सिद्धान्तोंका ज्ञान होगा। मैंने यद्यपि अपनी वुद्धिके अनुसार यथासाध्य त्रुटि न रहनेका प्रयत्न किया है। किन्तु सम्भव है कि छद्मस्थ होनेके कारण अनेक त्रुटियाँ रह गईं होंगीं। इसलिये सज्जन महाशयोंसे प्रार्थना है कि मुझको मंदवुद्धि जानकर क्षमा करें।

निवेदक—

गोपालदास वरैया।

स्व० पं० गोपालदासजी ।

पण्डितजीका जन्म विक्रम संवत् १९२३ के चैत्रमें आगरेमें हुआ था आपके पिताका नाम लक्ष्मणदासजी था । आपकी जाति 'वरैया' और गोत्र 'एछिया' था । आपके बाल्यकालके विषयमें हम विशेष कुछ नहीं जानते । इतना मालूम है कि आपके पिताकी मृत्यु छुटपनमें ही हो गई थी । अपनी माताकी कृपासे ही आप मिडिलतक हिन्दी और छठी सातवीं कक्षा तक अँगरेजी पढ़ सके थे । धर्मकी ओर आपकी जरा भी रुचि नहीं थी । अँगरेजीके पढ़े लिखे लड़के प्रायः जिस मार्गके पथिक होते हैं आप भी उसीके पथिक थे । खेलनाकूदना, मजा–मौज, तम्बाकू सिगरेट शैर और चौबोला गाना आदि आपके दैनिक कृत्य थे । १९ वर्षकी अवस्थामें आपनें अजमेरमें रेलवेके दफ्तरमें पन्द्रह रुपये महीनेकी नौकरी कर ली । उस समय आपको जैनधर्मसे इतना भी प्रेम नहीं था, कि कमसे कम जिनदर्शन तो प्रतिदिन कर लिया करें । अजमेरमें पं० मोहनलालजी नामके एक जैन विद्वान् थे । एक बार उनसे आपका जैनमंदिरमें परिचय हुआ और उनकी संगतिसे आपका चित्त जैनधर्मकी ओर आकर्षित हुआ और आप जैनग्रन्थोंका स्वध्याय करने लगे । दो वर्षके बाद आपने रेलवेकी नौकरी छोड़ दी और रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी नेमीचन्दजीके यहाँ इमारत बनवानेके काम पर २०) रु० मासिककी नौकरी करली । आपकी ईमानदारी और होशयारीसे सेठजी बहुत प्रसन्न रहे । अजमेरमें आप ६—७ वर्षतक रहे । इस बीचमें आपका अध्ययन बराबर होता रहा । संस्कृतका ज्ञान भी आपको वहीं पर हुआ । वहाँकी जैनपाठशालामें आपने लघुकौमुदी और जैनेन्द्रव्याकरणका कुछ अंश और न्यायदीपिका ये तीन ग्रंथ पढ़े थे । गोम्मटसारका अध्ययन भी आपनें उसी समय शुरू कर दिया था । अजमेरके सुप्रसिद्ध पण्डित मथुरादासजी और 'जैन-

जम्बूस्वामीके मेलेमें भी वम्बई सभाने इन्हें भेजा और इनके उद्योगसे वहाँ पर महासभाका कार्य शुरू हुआ । महासभाके महाविद्यालयके प्रारंभका काम आपके ही द्वारा होता रहा है । लगभग सं० १९५३ के भारतवर्षीय दिगम्बरजैनपरीक्षालय स्थापित हुआ और उसका काम आपने बड़ी ही कुशलतासे सम्पादन किया । इसके वाद आपने दिगम्बरजैनसभा बम्बईकी ओरसे जनवरी सन् १९०० में (सं० १९५६ के लगभग) 'जैनमित्र' का निकालना शुरू किया । पण्डितजीकी कीर्तिका मुख्य स्तंभ ' जैनमित्र ' है यह पहले ६ वर्षोंतक मासिक रूपमें और फिर संवत् १९६२ की कार्तिक सुदीसे २—३ वर्षतक पाक्षिकरूपमें पण्डितजीके सम्पादकत्वमें निकलता रहा । सं० १९६५ के १८ वें अंक तक जैनमित्रकी सम्पादकीमें पण्डितजीका नाम रहा ।। इसकी दशा उस समयके तमाम पत्रोंसे अच्छी थी, इस कारण इसका प्रायः प्रत्येक आन्दोलन सफल होता था । सं० १९५८ के आसोजमें बम्बई प्रान्तिक सभाकी स्थापना हुई, और इसका पहला अधिवेशन माघ सुदी ८ को आकलूजकी प्रतिष्ठापर हुआ । इसके मंत्रीका काम पण्डितजी ही करते थे और आगे वरावर आठ दश वर्षतक करते रहे । प्रान्तिक सभाके द्वारा संस्कृत विद्यालय बम्बई, परीक्षालय, तीर्थक्षेत्र, उपदेशकभण्डार आदिके जो जो काम होते रहे हैं, वे पाठकोंसे छुपे नहीं है ।

बम्बईकी दिगम्बर जैनपाठशाला सं० १९५० में स्थापित हुई थी । पं० जीवराम लल्लूराम शास्त्रीके पास आपने परीक्षामुख, चन्द्रप्रभकाव्य और कातंत्रव्याकरणको इसी पाठशालामें पढ़ा था ।

कुण्डलपुरके महासभाके जल्सेमें यह सम्मति हुई कि महाविद्यालय सहारनपुरसे उठाकर मोरेनामें पण्डितजीके पास भेज दिया जाय; परन्तु पण्डितजीका वैमनस्य चम्पतरायजीके साथ इतना वढ़ा हुआ था कि उन्होंने उनके अण्डरमें रहकर इस कामको स्वीकार न किया । इसी समय उन्हें एक स्वतंत्र जैनपाठशाला खोलकर काम करने की

इच्छा हुई । आपके पास पं० बंशीधरजी कुण्डलपुरके मेलेके पहलेहीसे पढ़ते थे। अब दो तीन विद्यार्थी और भी जैनसिद्धान्तका अध्ययन करनेके लिये जाकर रहने लगे। इन्हें छात्रवृत्तियाँ बाहरसे मिलती थीं। पण्डितजी केवल इन्हें पढ़ा देते थे। इसके बाद कुछ विद्यार्थी और भी आ गये और एक व्याकरणके अध्यापक रखनेकी आवश्यकता हुई जिसके लिये सबसे पहले सेठ सूरचन्द शिवरामजीने ३०) रु० मासिक सहायता देना स्वीकार किया। धीरे धीरे छात्रोंकी संख्या इतनी हो गई कि पण्डितजीको उनके लिए नियमित पाठशाला और छात्रालयकी स्थापना करनी पड़ी। यही पाठशाला आज 'जैनसिद्धान्तविद्यालय' के नामसे प्रसिद्ध है।

ग्वालियर स्टेटकी ओरसे पण्डितजीको मोरेनामें आनरेरी मजिस्ट्रेटका पद प्राप्त था। वहाँके चेम्बर आफ कामर्स और पञ्चायती बोर्डके भी आप मेम्बर थे। बम्बई प्रांतिक सभाने आपको 'स्याद्वादवारिधि,' इटावेकी जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाने 'वादिगजकेसरी' और कलकत्तेके गवर्नमेंट संस्कृतकालेजके पण्डितोंने 'न्यायवाचस्पति' पदवी प्रदान की थी। सन् १९१२ में दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाने आपको अपने वार्षिक अधिवेशनका सभापति बनाया था और आपका बहुत बड़ा सम्मान किया था।

बस पण्डितजीके जीवनकी मुख्य मुख्य घटनायें यही हैं। अब हम पण्डितजीके खास खास गुणोंपर कुछ विचार करेंगे।

पाण्डित्य।

पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं कि पण्डितजीकी पठित विद्या बहुत ही थोड़ी थी। जिस संस्कृतके वे पण्डित कहला गये, उसका उन्होंने कोई एक भी व्याकरण अच्छी तरह नहीं पढ़ा था। गुरुमुखसे तो उन्होंने बहुत ही थोड़ा नाममात्रको पढ़ा था। तब वे इतने बड़े विद्वान् कैसे हो गये? इसका उत्तर यह है कि उन्होंने स्वावलम्बनशीलता

और निरन्तरके अध्यवसायसे पाण्डित्य प्राप्त किया था । पण्डितजी जीवनभर विद्यार्थी रहे । उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया, वह अपने ही अध्ययनके बल पर और इस कारण उसका मूल्य रटे हुए या घोखे हुए ज्ञानसे बहुत अधिक था । उन्हें लगातार दश वर्षतक बीसों विद्यार्थियोंको पढ़ाना पड़ा और उनकी शंकाओंका समाधान करना पड़ा । विद्यार्थी प्रौढ़ थे, कई न्यायाचार्य और तर्कतीर्थोंने भी आपके पास पढ़ा है, इस कारण प्रत्येक शंकापर आपको घंटों परिश्रम करना पड़ता था। जैनधर्मके प्रायः सभी बड़े बड़े उपलब्ध ग्रन्थोंको उन्हें आवश्यकताओंके कारण पढ़ना पड़ा । इसका यह फल हुआ कि उनका पाण्डित्य असामान्य हो गया । वे न्याय और धर्मशास्त्रके बेजोड़ विद्वान् हो गये और इस बातको न केवल जैनोंने, किन्तु कलकत्तेके बड़े बड़े महामहोपाध्यायों और तर्कवाचस्पतियोंने भी माना । विक्रमकी इस बीसवीं शताब्दिके आप सबसे बड़े जैन पण्डित थे, आपकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति विलक्षण थी।

वक्तृत्व और वादित्व।

पण्डितजीकी व्याख्यान देनेकी शक्ति भी बहुत अच्छी थी । यह भी आपको अभ्यासके बलसे प्राप्त हुई थी । आपके व्याख्यानोंमें यद्यपि मनोरंजकता नहीं रहती थी और जैनसिद्धान्तके सिवाय अन्य विषयोंपर आप बहुत ही कम बोलते थे । फिर भी आप लगातार दो दो तीन तीन घंटेतक व्याख्यान दे सकते थे । आपके व्याख्यान विद्वानोंके ही कामके होते थे । वाद या शास्त्रार्थ करनेकी शक्ति आपमें बड़ी विलक्षण थी । जब जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावेके दौरे शुरू हुए और उसने पण्डितजीको अपना अगुआ बनाया, तब पण्डितजीको इस शक्तिका खूब ही विकास हुआ । आर्यसमाजके कई बड़े बड़े शास्त्रार्थोंमें आपकी वास्तविक विजय हुई और उस विजयको प्रतिपक्षियोंने भी स्वीकार किया । बड़ेसे बड़ा विद्वान् आपके आगे बहुत समयतक

न टिक सकता था। आपको अपनी इस शक्तिका उचित अभिमान था, कभी कभी आप कहा करते थे। कि मैं अमुक अमुक महामहोपाध्यायोंको भी बहुत जल्दी पराजित कर सकता हूँ; परन्तु क्या करूँ, उनके सामने घण्टोंतक धाराप्रवाह संस्कृत बोलनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। पण्डितजी संस्कृतमें बातचीत कर सकते थे और अपने छात्रोंके साथ तो वे घण्टों बोला करते थे, परन्तु फिर भी उनका व्याकरण इतना पक्का नहीं था, कि वे उसकी सहायतासे शुद्ध संस्कृतके प्रयोग औरोंके सामने निर्भय होकर करते रहें।

लेखनकौशल।

पण्डितोंको लिखनेका अभ्यास नहीं रहता है, पर पण्डितजी इस विषयमें अपवाद थे। उनमें अच्छी लेखनशक्ति थी। यद्यपि अन्यान्य कामोंमे फँसे रहनेके कारण उनकी इस शक्तिका विकास नहीं हुआ और उन्होंनें प्रयत्न भी बहुत कम किया; फिर भी हम उन्हें जैनसमाजके अच्छे लेखक कह सकते हैं। उनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ हैं, जैनसिद्धान्तदर्पण, सुशीलाउपन्यास और जैनसिद्धान्तप्रवेशिका। जैनसिद्धान्तदर्पणका केवल एक ही भाग है। यदि इसके आगेके भी भाग लिखे गये होते, तो जैनसाहित्यमें यह एक बड़े कामकी चीज होती। यह पहला भाग भी बहुत अच्छा है। प्रवेशिका जैनधर्मके विद्यार्थियोंके लिए एक छोटेसे पारिभाषिक कोशका काम देती है। इसका बहुत प्रचार है। सुशीलाउपन्यास उस समय लिखा गया था, जब हिन्दीमें अच्छे उपन्यासोंका एक तरहसे अभाव था और आश्चर्यजनक घटनाओंके विना उपन्यास उपन्यास ही न समझा जाता था। उस समयकी दृष्टिसे इसकी रचना अच्छे उपन्यासोंमें की जा सकती है। इसके भीतर जैनधर्मके कुछ गंभीर विषय डाल दिये गये हैं, जो एक उपन्यासमें नहीं चाहिए थे, फिर भी वे बड़े महत्त्वके हैं। इन तीन पुस्तकोंके सिवाय पण्डितजीने सार्वधर्म, जैनजागरफी आदि कई छोटे छोटे ट्रेक्ट भी लिखे थे।

चारित्र।

पण्डितजीका चारित्र बड़ा ही उज्ज्वल था। इस विषयमें वे पण्डित-मण्डलीमें अद्वितीय थे। उन्होंने अपने चारित्रसे दिखला दिया है, कि संसारमें व्यापार भी सत्य और अचौर्यव्रतको दृढ़ रखकर किया जा सकता है। यद्यपि इन दो व्रतोंके कारण उन्हें बार बार असफलतायें हुई, फिर भी उन्होंने इन व्रतोंको मरणपर्यंत अखण्ड रक्खा। बड़ी बड़ी कड़ी परीक्षाओंमें भी आप इन व्रतोंसे नहीं डिगे। एक बार मण्डीमें आग लगी और उसमें आपका तथा दूसरे व्यापारियोंका माल जल गया। मालका बीमा बिका हुआ था। दूसरे लोगोंने बीमा कम्पनियोंसे इस समय खूब रुपये वसूल किये, जितना माल था, उससे भी अधिकका बतला दिया। आपसे भी कहा गया। आप भी इस समय अच्छी कमाई कर सकते थे; पर आपने एक कौड़ी भी अधिक नहीं ली। रेलवे और पोस्टाफिसका यदि एक पैसा भी आपके यहाँ भूलसे अधिक आ जाता था, तो उसे वापस दिये विना आपको चैन न पड़ती थी। रिश्वत देनेका आपको त्याग था। इसके कारण आपको कभी कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था, पर आप उसे चुपचाप सह लेते थे।

पण्डितजीको कोई भी व्यसन न था। खाने पीनेकी शुद्धता पर आपको अत्यधिक खयाल था। खाने पीनेकी अनेक वस्तुयें आपने छोड़ रक्खी थीं। इस विषयमें आपका व्यवहार बिल्कुल पुराने ढंगका था। रहन सहन आपकी बहुत सादी थी। कपड़े आप इतने मामूली पहनते थे, उनकी ओर आपका इतना कम ध्यान रहता था कि अपरिचित लोग आपको कठिनाईसे पहचान सकते थे।

धर्मकार्योंके द्वारा आपने अपने जीवनमें कभी एक पैसा भी नहीं लिया। यहाँतक कि इसके कारण आप अपने प्रेमियोंको दुखी तक कर दिया करते थे, पर भेट या बिदाई तो क्या एक दुपट्टा या कपड़ेका टुकड़ा भी ग्रहण नहीं करते थे। हाँ! जो कोई बुलाता था उससे आने जानेका किराया ले लेते थे।

नहीं। पर पण्डितजी इस विषयमें अपवाद थे। वे एक अच्छे विचारक थे। वे अपनी विचारशक्तिके बलसे पदार्थका स्वरूप इस ढंगसे बतलाते थे कि उसमें एक नूतनता मालूम होती थी। उन्होंने जैनसिद्धान्तकी ऐसी अनेक गाँठें सुलझाई थीं, जो इस समयके किसी भी विद्वानसे नहीं खोली जाती थीं। वे गोम्मटसारके प्रसिद्ध टीकाकार स्व० पं० टोडरमलजीकी भी कई सूक्ष्म भूलें बतलानेमें समर्थ हुए थे। जैनभूगोलके विषयमें उन्होंने जितना विचार किया था, और इस विषयको सच्चा समझनेके लिए जो जो कल्पनायें की थीं, वे बड़ी ही कुतूहलवर्धक थीं। एक बार उन्होंने उत्तर–दक्षिण ध्रुवोंकी छह महीनेकी रात और दिनको भी जैनभूगोलके अनुसार सत्य सिद्ध करके दिखलानेका प्रयत्न किया था। वर्तमानके योरोप आदि देशोंको उन्होंने भरतक्षेत्रमें ही सिद्ध किया था और शास्त्रोक्त लम्बाई चौड़ाईसे वर्तमानका मेल न खानेका कारण पृथिवीका वृद्धिह्रास या घटना बढ़ना 'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ' आदि सूत्रके आधारसे बतलाया था। यदि पण्डितजीके विचारोंका क्षेत्र केवल अपने ग्रन्थोंकी ही परिधिके भीतर कैद न होता, सारे ही जैनग्रन्थोंको प्राचीन और अर्वाचीनोंको—वे केवली भगवानकी ही दिव्यध्वनिके सदृश न समझते होते, तो वे इस समयके एक अपूर्व विचारक होते, उनकी प्रतिभा जैनधर्मपर एक अपूर्व ही प्रकाश डालती और उनके द्वारा जैनसमाजका आशातीत कल्याण होता।

निःस्वार्थसेवा।

पण्डितजीकी प्रतिष्ठा और सफलताका सबसे बड़ा कारण उनकी निःस्वार्थसेवाका या परोपकारशीलताका भाव है। एक इसी गुणसे वे इस समयके सबसे बड़े जैनपण्डित कहला गये। जैनसमाजके लिए उन्होंने अपने जीवनमें जो कुछ किया, उसका बदला कभी नहीं चाहा। जैनधर्मकी उन्नति हो, जैनसिद्धान्तके जाननेवालोंकी संख्या बढ़े, केवल इसी भावनासे उन्होंने निरन्तर परिश्रम किया। अपने विद्यालयका

प्रबन्धसम्बन्धी तमाम काम करनेके सिवाय अध्यापन कार्य भी उन्हें करना पड़ता था। हमने देखा है कि शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा, जिस दिन पण्डितजीको अपने कमसे कम चार घण्टे विद्यालयके लिए न देने पड़ते हों। जिन दिनोंमें पण्डितजीका व्यापारसम्बन्धी काम बढ़ जाता था और उन्हें समय नहीं मिलता था, उस समय बड़ी भारी थकावट हो जाने पर भी वे कभी कभी १०–११ बजे रातको विद्यालयमें आते थे और विद्यार्थियोंको घंटा भर पढ़ाकर सन्तोष पाते थे। गत कई वर्षोंसे पण्डितजीका शरीर बहुत शिथिल हो गया था, फिर भी धर्मके कामके लिए वे बड़ी बड़ी लम्बी सफ़रें करनेसे नहीं चूकते थे। अभी भिण्डके मेलेके लिए जब आप गये, तब आपका स्वास्थ्य बहुत ही चिन्तनीय था और वहाँ जानेसे ही, इसमें सन्देह नहीं कि आपकी अन्तिम घटिका और जल्दी आ गई।

पण्डितजीकी निःस्वार्थवृत्ति और दयानतदारी पर लोगोंको दृढ़ विश्वास था। यही कारण है जो बिना किसी स्थिर आमदनीके वे विद्यालयके लिए लगभग दश हजार रुपया सालकी सहायता प्राप्त कर लेते थे।

कौटुम्बिक कष्ट।

पण्डितजीको जहाँ तक हम जानते हैं कुटुम्बसम्बन्धी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषयमें हम उन्हें ग्रीसके प्रसिद्ध विद्वान् सुकरातके समकक्ष समझते हैं। पण्डितानीजीका स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर, कठोर, जिद्दी और अर्द्धविक्षिप्त है। जहाँ पण्डितजीको लोग देवता समझते थे, वहाँ पण्डितानीजी उन्हें कौड़ी कामका भी आदमी नहीं समझती थीं! वे उन्हें बहुत ही तंग करती थीं और इस बातक़ा जरा भी खयाल नहीं रखती थीं कि मेरे बर्तावसे पण्डितजीकी कितनी अप्रतिष्ठा होती होगी। कभी कभी पण्डितानीजीका धावा विद्यालय पर भी होता था और उस समय छात्रों तककी आफत आ जाती थी!

इस अप्रिय कथाके उल्लेख करनेका कारण यह है कि पण्डितजी इस निरन्तरकी यातनाको—कलहको—उपद्रवको बड़ी ही धीरतासे विना उद्वेगके भोगते थे और अपने कर्तव्यमें जरा भी शिथिलता नहीं आने देते थे और यह पण्डितजीका अनन्यसाधारण गुण था। सुकरातकी स्त्री खिसियानी हुई बैठी थी; सुकरात कई दिनके बाद घर आये। खाने पीनेकी वस्तुओंका इन्तजाम किये बिना ही वे घरसे चले गये थे और कहीं लोकोपकारी व्याख्यानादि देनेमें लगकर घरकी चिन्ता भूल गये थे। पहले तो श्रीमतीने बहुत सा गर्जन तर्जन किया, पर जब उसका कोई भी फल नहीं हुआ, तब उसका वेग निःसीम हो गया और उसने एक घड़ा बर्फ जैसे पानीका उस शीतकालमें सुकरातके ऊपर औंधा दिया! सुकरातने हँस करके कह दिया कि गर्जनके बाद वर्षण तो स्वभाविक ही है! पण्डितजीके यहाँ इस प्रकारकी घटनायें—यद्यपि वे लिखनेमें इतनी मनोरंजक नहीं हैं—अकसर हुआ करती थीं और पण्डितजी उन्हें सुकरातके ही समान चुपचाप सहन किया करते थे।

विद्यालयसे प्रेम।

विद्यालयसे पण्डितजीको बहुत मोह हो गया था। उसे ही वे अपना सर्वस्व समझते थे। पण्डितजी बड़े ही अभिमानी थे। किसीसे एक पैसाकी भी याचना करना उनके स्वभावके विरुद्ध था। शुरू शुरूमें—जब मैं सिद्धान्तविद्यालयका मंत्री था—पण्डितजी विद्यालयके लिए सभाओंमें सहायता माँगनेके सख्त विरोधी थे, पर पीछे पण्डितजीका वह सख्त अभिमान विद्यालयके वात्सल्यकी धारामें गल गया और उसके लिए 'भिक्षां देहि' कहनेमें भी उन्हें संकोच नहीं होने लगा।

विविध बातें।

पण्डितजी बहुत सीधे और भोले थे, उनके भोलेपनसे धूर्त लोग अकसर लाभ उठाया करते थे। एकाग्रताका उनको बड़ा अभ्यास था। चाहे जैसे कोलाहल और अशान्तिके स्थानमें वे घण्टोंतक विचारोंमें

लीन रह सकते थे । स्मरणशक्ति भी उनकी बड़ी विलक्षण थी । बरसोंकी बातोंको वे अक्षरशः याद रख सकते थे । विदेशी रीतिरिवाजोंसे उन्हें बहुत अरुचि थी । जब तक कोई बहुत जरूरी काम न पड़ता था, तब तक वे अँगरेजीका उपयोग नहीं करते थे । हिन्दीसे उन्हें बहुत ही प्रेम था । अन्य पण्डितोंके समान वे इसे तुच्छ दृष्टिसे नहीं देखते थे । उनके विद्यालयकी लायब्रेरीमें हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकोंका संग्रह है । पण्डितजी बड़े देशभक्त थे । 'स्वदेशी' के आन्दोलनके समय आपने जैनमित्रके द्वारा जैनसमाजमें अच्छी जागृति उत्पन्न की थी ।

मनुष्यके स्वभावका और चारित्रका अध्ययन करना बहुत कठिन है और जबतक यह न किया जाय, तबतक किसी पुरुषका चरित नहीं लिखा जा सकता । पण्डितजीके सहवासमें थोड़े समयतक रहकर हमने उनके विषयमें जो कुछ जाना था, उसीको यहाँ सिलसिलेसे लिख दिया है ।

जैनहितैषीसे उद्धृत ।

पंडितजीका स्वर्गवास चैत्र सुदी ५ सं० १९७४ में हुआ, जिससे जैन समाजका एक ऐसा स्थान खाली हो गया, जिसकी पूर्ति आजतक नहीं हुई है ।

नमः श्रीवीतरागाय ।

जैनसिद्धांतदर्पण ।

प्रथम अधिकार ।

(लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप निरूपण)

मंगलाचरण ।

नत्वा वीरजिनेन्द्रं, सर्वज्ञं मुक्तिमार्गनेतारम् ।
बालप्रबोधनार्थं जैनं सिद्धान्तदर्पणं वक्ष्ये ॥

पदार्थोंके विशेष स्वरूपका विचार **लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेपके** जाने विना नहीं हो सकता, इस कारण पहले पहल इनका ही निरूपण किया जाता है, उसमें भी उद्देशके अनुसार सबसे पहले लक्षणका संक्षेप स्वरूप लिखा जाता है ।

" लक्ष्यते व्यावृत्यते वस्त्वनेनेति लक्षणम् "—जिसके द्वारा वस्तु अलग मालूम हो, इस निरुक्तिके अर्थको हृदयमें रख कर ही स्वामी श्रीअकलङ्कदेवने तत्त्वार्थवार्तिकालंकारमें यों कहा है कि **" परस्परव्यतिकरे सति येनान्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणम् । "**

रहकर और अपने लक्ष्यके सब देशोंमें रह कर, दूसरोंसे व्यावृत्ति करनेका कारण है, वही सल्लक्षण है।

अब प्रमाणके स्वरूपका वर्णन करते हैं।

प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् प्रकर्षेण—संशयादिव्यवच्छेदेन मीयते परिच्छिद्यते ज्ञायते वस्तुतत्त्वं येन तत्प्रमाणम् अर्थात् संशय, विपर्यय, अनध्यवसायादिकको दूर करते हुए, जिसके द्वारा वस्तुका स्वरूप जाना जाय, उसे प्रमाण कहते हैं। यह प्रमाण शब्द, प्र उपसर्गपूर्वक मा धातुसे, करण अर्थमें, ल्युट् प्रत्यय करनेसे सिद्ध होता है. इसमें प्र शब्दका अर्थ, प्रकर्षपणा है, यानी संशय आदिक मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति करते हुए है और मा धातुका अर्थ, ज्ञान है और करण अर्थमें ल्युट्प्रत्ययका अर्थ, साधकतम करण (**यद्व्यापारादनन्तरमव्यवहितत्वेनक्रियानिष्पत्तिस्तत्साधकतमंतदेवकरणम्** अर्थात् जिसके व्यापारके अनन्तर ही, बे रोक टोक क्रियाकी निष्पत्ति होती है, उसे साधकतम करण कहते हैं) है। इन सबके कहनेका मतलब यह है कि "सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्" सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। जो मिथ्याज्ञान होते हैं, वे प्रमाण नहीं हो सकते। कारण कि प्रमाणसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, उस विषयका अज्ञान हट जाता है। परन्तु संशयादिक मिथ्याज्ञानसे, उस विषयका अज्ञान नहीं हटता—वस्तुका ठीक स्वरूप नहीं मालूम होता। और जो ज्ञानरूप नहीं होते वे भी प्रमाण नहीं हो सकते। जैसे घटपटादिक, कारण कि हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेके लिये, विद्वान् और परीक्षक जन, प्रमाणको बतलाते हैं। और हितकी प्राप्ति, अहितका परिहार, बिना ज्ञानके नहीं हो सकता। इसलिए सच्चे ज्ञानको प्रमाण

कहा है, और जो जाननेमें सहायता पहुंचाते हुए भी साधकतम नहीं होते, वे भी प्रमाण नहीं हो सकते, जैसे सन्निकर्षादि। यद्यपि सन्निकर्ष कहिये इंद्रियोंका पदार्थसे मिलना, किन्हीं किन्ही इंद्रियोंके द्वारा पैदा होनेवाले ज्ञानकी उत्पत्तिमें मदद पहुँचाता है, परन्तु सन्निकर्ष होनेके अनन्तर ही, तद्विषयक अज्ञानकी निवृत्ति नहीं हो सकती, कारण कि वह अचेतन है, जो स्वयं अचेतन है, वह दूसरेके अज्ञानको कैसे हटा सकता है? क्योंकि ऐसा नियम है कि जो जिसका विरोधी होता है, वही उसको हटा सकता है। देखा जाता है कि अंधकारको दूर करनेके लिये, प्रकाशमय दीपककी आवश्यकता होती है, और उससे (अंधकारके विरोधी प्रकाशमय दीपकसे) अंधकार हट सकता है, न कि कागज कलम दावातसे। कारण कि कागज कलम दावात ये कोई अंधकारके विनाशक नहीं हैं। ये बात दूसरी है कि दावात और कलमके द्वारा कागजके ऊपर लिखे हुए हुक्मनामासे दीपक आ सकता और अंधकार दूर हो सकता है, परन्तु वे अंधकारके हटने, वा प्रकाश होनेके साधकतम कारण न होनेकी वजहसे, अंधकार विनाशक नहीं कहे जा सकते। ठीक इस ही तरह, यद्यपि सन्निकर्ष, ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है। परन्तु वह अज्ञानके हटनेमें साधकतम करण न होनेकी वजहसे, प्रमाण नहीं कहा जा सकता, इस ही तरह इंद्रियवृत्ति आदि भी प्रमाण नहीं हो सकते, कारण कि वे स्वयं अचेतन होनेकी वजहसे, अज्ञानकी निवृतिरूपप्रमितिमें, कारण नहीं हो सकते हैं। ऐसा होनेसे (**प्रमीयतेऽनेन–प्रमितिक्रियां प्रतियत्करणंतत्प्रमाणं** अर्थात् जो प्रमितिक्रियाके प्रति करण हो, उसे प्रमाण कहते हैं) प्रमाण नहीं हो सकता। "रक्तेन दूषितं वस्त्रं न हि रक्तेन शुद्ध्यति" जो कपड़ा लोहूसे

भरा हुआ है, वह लोहूसे ही साफ नहीं हो सकता है। इस ही तरह जो स्वयं अज्ञान रूप है वह अज्ञानको नहीं हटा सकता है इसलिये प्रमाणका "**सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्**"—सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं यह लक्षण, निर्विवाद समीचीन सिद्ध हुआ। प्रमाणमें प्रमाणता, यानी सच्चे ज्ञानकी सचाई, वही है, जो, ज्ञानने जिसको विषय किया—जिस पदार्थका ज्ञान हुआ, उस पदार्थका यथार्थमें वैसा ही होना। यदि किसी आदमीको साँप देखकर "यह साँप है" इस प्रकार ज्ञान हुआ, तो हम उसके ज्ञानको, सच्चा—प्रमाणात्मक ज्ञान कहेंगे, और यदि किसी आदमीको, जो कि वास्तवमें एक डोरी थी, उसमें "यह साँप है" इस प्रकारका ज्ञान हुआ तो हम उसके ज्ञानको, मिथ्या—अप्रमाणात्मक ज्ञान कहेंगे। कारण कि जिसका उसे ज्ञान हुआ, यथार्थमें वह चीज वहाँ पर नहीं है बजाय उसके, और ही कोई चीज वहाँ पर है। इन दोनों ही (प्रमाणात्मक—अप्रमाणात्मक) ज्ञानोंमें, जुदे जुदे कारणोंकी आवश्यकता होती है। कितने ही लोगोंका कहना है कि—जिन कारणोंसे सामान्य ज्ञान पैदा होता है, उन ही कारणोंसे, प्रमाणात्मक ज्ञानकी भी उत्पत्ति होती है, उसमें अन्य कारणान्तरोंकी आवश्यकता नहीं है। इतना जरूर है कि चक्षुरादि इंद्रियोंमें कोई विकार होनेसे, या अन्य कोई कारणोंसे, ज्ञान, अप्रमाण हो जाता है। इस विषयमें न्यायका यह सिद्धान्त है कि जो भिन्न २ कार्य होते हैं, वे भिन्न भिन्न कारणोंसे पैदा हुआ करते हैं, जैसे मिट्टीसे घट और तन्तुओंसे पट। इस ही तरह प्रमाणात्मक अप्रमाणात्मक ज्ञान भी, दो कार्य हैं, वे भी अपने भिन्न २ कारणोंसे पैदा होंगे। यदि ऐसा न माना जायगा तो यह प्रमाण है और यह अप्रमाण है, इस प्रकारका

विभाग नहीं बन सकता । क्योंकि आपके पास इस विभाग (यह प्रमाण और दूसरा अप्रमाण) के करनेका कोई सबूत ही नहीं, क्योंकि इससे उलटा भी हो सकता, अर्थात् जिसको कि आप अप्रमाण कहते हैं, उसको हम प्रमाण, और जिसको आप प्रमाण बतलाते हैं, उसको हम अप्रमाण भी कह सकते हैं । इस लिये जिस तरह आप ज्ञानके अप्रमाण होनेमें दोषोंको कारण बतलाते हैं, उस ही तरह ज्ञानके प्रमाण होनेमें गुणोंको भी कारण अवश्य मानना चाहिये । इस प्रमाण—सच्चे ज्ञानकी उत्पत्ति, परसे ही होती है, परन्तु सच्चे ज्ञानकी सचाईका निश्चय कहीं पर (अभ्यस्त दशामें अर्थात् जिसको कि हम पहले कई दफे जान चुके हैं ऐसी हालतमें) स्वतः कहिये अपने आप हो जाता है और कहीं पर (अनभ्यस्त दशामें जिसके कि जाननेका पहले पहल मौका पड़ा हुआ है ऐसी हालतमें) परतः कहिये दूसरे अन्य कारणोंसे होता है । फर्ज कीजिये जैसे कितने ही एक लड़कोंने तालावमें स्नान करनेके लिये तय्यारी की और वे फौरन ही निधड़क हो कर उस तालावमें, जिसको कि वे पहले कई दफे जान चुके हैं, जाकर स्नान करते हैं तो ऐसी हालतमें उनको जिस समय तालावका ज्ञान हुआ, उस समय उसकी सचाईका भी ज्ञान हो लिया । यदि ऐसा न होता, तो वे निधड़क होकर हर्गिज भी दौड़ कर न जाते, इसलिये मालूम हुआ कि उनको उस तालावकी सचाईका निश्चय, पहले ही (उसके ज्ञान होनेके समय ही) हो चुका था, और एक दूसरी जगह एक मुसाफिर, जो कि जंगलमें जा रहा था, दूर ही से किसी एक पदार्थको, जिसको कि इस समय मरीचिका, या नदी, या तालाव, कुछ नहीं कह सकते, देख कर ज्ञान हुआ “ वहाँ

जल है" परन्तु उस जलज्ञानकी सचाईका निश्चय, उसे उस ही समय नहीं हुआ। अन्यथा उसके दिलमें संशय न होता, परन्तु उसे संशय तो अवश्य होता है कि जो मैंने जाना है वह जल है या नहीं। फिर धीरे धीरे आगे चल कर उसे उधर ही से (जिस दिशामें कि उसे "वहाँ जल है" ऐसा ज्ञान हुआ था) धीमे धीमे वहती हुई, ठंडी हवाका स्पर्श हुआ। तथा उसीके आस पासमें कमलोंकी खुशबू मालूम हुई, तथा मेंडकोंके टर्रानेकी आवाज सुनाई पड़ी, और फिर थोड़े देर आगे चल कर ही वह क्या देखता है, कि पनहारी, पानीसे भरे हुए घड़ोंको लिये हुए आ रहीं हैं। तो फिर उसे फौरन ही इस वातका निश्चय हो जाता है, कि जो मुझे पहले पानीका ज्ञान हुआ था, वह ठीक ही था, कारण कि यदि यहाँ पर पानी नहीं होता, तो पानीके वगैर नहीं होनेवाली ठंडी हवा, कमलोंकी खुशबू, तथा मेंडकोंकी आवाज क्यों होती। ऐसे स्थलमें जल ज्ञानकी सचाईका निश्चय उसे दूसरे कारणोंसे होता है; वस इसको ही अभ्यस्तदशामें प्रामाण्यकी ज्ञप्ति स्वतः और अनभ्यस्तदशामें परतः होती है, कहते हैं। उस प्रमाणात्मक ज्ञानके मूल दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष प्रमाण उस ज्ञानको कहते हैं जो पदार्थके स्वरूपको स्पष्ट रीतिसे जानता है। उसके दो भेद हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष १ (जिसको लोग उसमें एक देशीय निर्मलता होनेकी वजहसे प्रत्यक्ष कहते हैं। परन्तु वास्तवमें जो इंद्रियादिककी अपेक्षा रखनेसे परोक्ष हो, क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है कि "**असहायं प्रत्यक्षं भवति परोक्षं सहायसापेक्षम्**" अर्थात् जो इंद्रियादिककी सहायता न लेकर केवल आत्माके अवलम्बनसे वस्तुका स्पष्ट जानना है वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और जो

ज्ञानके द्वारा जाने हुए पदार्थके विशेष अंशमें, ईहा ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है और ईहा, अवाय, धारणा इन तीनों ज्ञानोंमें प्रबलता दुर्बलताकी अपेक्षा विशेपता है । ईहा ज्ञान इतना कमजोर है कि जिस पदार्थका ईहा होकर छूट जाय उसके विपयमें, कालान्तरमें संशय और विस्मरण हो जाता है और अवाय ज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें संशय नहीं होता । इस लिये ईहा ज्ञानसे यह अवाय ज्ञान प्रबल है, परन्तु इसके विपयमें विस्मरण हो जाता है और धारणा ज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें, कालान्तरमें संशय तथा विस्मरण भी नहीं होता है । इस लिये यह ज्ञान अवाय ज्ञानसे भी प्रबल है, इसलिये विपयमें विशेपता तथा उत्तरोत्तर ज्ञानोंमें प्रबलता होनेकी वजहसे ये चारों ही ज्ञान प्रमाण हैं । और जिस ज्ञानमें, इंद्रिय और मनकी सहायता न होनेकी वजह तथा केवल आत्माकी अपेक्षा होनेकी वजह सर्व देशसे निर्मलता पाई जाय, उसे पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं । उसके दो भेद हैं विकल प्रत्यक्ष १ सकल प्रत्यक्ष २ । जो कुछ एक पदार्थोंको सर्वांशकरके स्पष्ट रीतिसे जानता है, उसे विकल प्रत्यक्ष कहते हैं । इसके भी दो भेद हैं । अवधि ज्ञान १ मनःपर्यय ज्ञान २ । जो सम्पूर्ण पदार्थोंको सर्वांशकरके स्पष्ट रीतिसे जानता है वह सकल प्रत्यक्ष है । इसका दूसरा कोई जुदा भेद नहीं है, इसहीको केवलज्ञान कहते हैं । परोक्ष प्रमाण उस ज्ञानको कहते हैं जो पदार्थके स्वरूपको अस्पष्ट रीतिसे जानता है । भावार्थ-ज्ञानावरणी कर्मके क्षयसे, अथवा कोई एक विलक्षण क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाली और शाब्द व अनुमानादि ज्ञानसे जो नहीं जानी जा सकती है, ऐसी जो एक अनुभवसिद्ध निर्मलता है उस ही को स्पष्टता विशदता कहते हैं, यह निर्मलता जिस ज्ञानमें पाई जाय

वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और जिस ज्ञानमें वह न पाई जाय वह परोक्ष ज्ञान है । परोक्षज्ञानके स्मृति १ प्रत्यभिज्ञान २ तर्क ३ अनुमान ४ और आगम ५ ऐसे पांच भेद हैं । जिस किसी पदार्थको धारणात्मक ज्ञानसे पहले अच्छी तरह जान लिया था, उसी पदार्थके "वह पदार्थ" इस प्रकार याद करनेको स्मृति कहते हैं । जबतक पदार्थका अवग्रह, ईहा, अवाय ज्ञान हो भी जाता है, परन्तु धारणा ज्ञान नहीं होता तबतक उस पदार्थमें स्मृति ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है । अनुभव और स्मरण यह दोनों ज्ञान जिसमें कारण हों, ऐसे जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । इस प्रत्यभिज्ञानके तीन भेद हैं । एकत्व प्रत्यभिज्ञान १ सादृश्य प्रत्यभिज्ञान २ वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान ३ जो स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंकी दो दशाओंमें एकता दिखलाते हुए "यह वही है जिसे पहले देखा था" ऐसे आकारका ज्ञान होता है उसे एकत्वप्रत्यभिज्ञान कहते हैं । जो स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत, पूर्वमें जाने हुए तथा उत्तरकालमें जाने हुए दो पदार्थोंमें सदृशता दिखलाते हुए "यह उसके सदृश है जिसे पहले देखा था" इस आकारवाला जोड़ रूप ज्ञान होता है, उसे सादृश्यप्रत्यभिज्ञान कहते हैं । जो स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पूर्वकालमें अनुभव किये हुए तथा उत्तरकालमें जाने हुए दो पदार्थोंमें, विसदृशता—विलक्षणता दिखलाते हुए 'यह उससे विलक्षण है जिसको पहले देखा व जाना था' इस आकारका ज्ञान होता है, उसको वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । इस ही तरह और भी अनेक भेद जान लेना चाहिये ।

व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते हैं । अर्थात् साधन (जिसके द्वारा साध्यकी सिद्धि की जाती है) के होने पर साध्य (जिसकी

सिद्धि की जाय) के होने तथा साध्यके न होने पर साधनके भी न होनेको अविनाभाव सम्बन्ध (अ—न, विना—साध्यं विना, भावः—भवनम् हेतोरितिशेषः अर्थात् साध्यके विना हेतुके न होनेको अविनाभाव कहते हैं) कहते हैं। इसहीका नाम व्याप्ति है। यह व्याप्ति दो तरह की है, एक समव्याप्ति, दूसरी विषमव्याप्ति। दुतरफा व्याप्तिको अर्थात् जिन दो पदार्थोंमें दोनों तरफसे अन्वय (होने पर होना) व्यतिरेक (न होने पर न होना) पाया जाय उसे समव्याप्ति कहते हैं जैसे ज्ञान और आत्मामें जहाँ २ ज्ञान होता है वहाँ २ आत्मत्व—जीवत्व जरूर होता है, इस ही तरह जहाँ आत्मत्व—जीवत्व होता है वहाँ २ ज्ञान भी जरूर होता है और जहाँ २ ज्ञान नहीं होता वहाँ २ आत्मत्व भी नहीं होता, इस ही तरह जहाँ २ आत्मत्व नहीं होता वहाँ २ ज्ञान भी नहीं होता, इसलिये यहाँ ज्ञानका आत्मत्वके साथ और आत्मत्वका ज्ञानके साथ अन्वय-व्यतिरेक होनेसे समव्याप्ति है। एक तरफा व्याप्ति अर्थात् अविनाभूत जिन दो पदार्थोंमें एक तरफसे व्याप्ति होती है, उसको विषम व्याप्ति कहते हैं। जैसे धूम और अग्निमें, जहाँ २ धूम होता है वहाँ २ अग्नि जरूर होती और जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता, इस तरह धूमकी तरफसे तो अग्निके साथ अन्वय व्यतिरेक पाया जाता है, परन्तु जहाँ २ अग्नि होती है वहाँ २ धूम भी होता है तथा जहाँ २ धूम नहीं होता वहाँ २ अग्नि भी नहीं होती, इस तरह अग्निकी तरफसे धूमके साथ अन्वयव्यतिरेक नहीं पाया जाता है। कारण कि अंगारेमें तथा तपाये हुए लोहेके गोलेमें अग्नि तो है परन्तु धूम नहीं इस लिये अन्वय व्यभिचार (होने पर न होना) तथा व्यतिरेक व्यभिचार (न होने पर होना) आजानेसे

एक तरफा ही व्याप्ति रही, इस ही को विषम व्याप्ति कहते हैं। इन दोनों ही तरहकी व्याप्तिका जिससे ज्ञान हो उसको तर्क कहते हैं। भावार्थ जो साध्य साधन सम्बन्धी अज्ञानके हटानेमें साधकतम कारण हो उसको तर्क ज्ञान कहते हैं। साधन (जो साध्यके अभावमें न रहता हो) से साध्य—जिसको वादी लोग सिद्ध करना चाहते हों, क्योंकि ऐसा न होनेसे अतिप्रसंग ही हो जायगा। अर्थात् "कहे खेतकी सुनै खलियानकी" जैसी हालत हो जायगी। वादी तो चाहता है कि यहाँ पर अग्निकी सिद्धि की जाय परन्तु प्रतिवादी उससे उलटे ही ईंट पत्थरकी सिद्धि कर रहा है, तो वह ईंट पत्थर साध्य नहीं कहे जा सकते, क्योंकि वादी उनको सिद्ध ही नहीं कराना चाहता है। और जो यथार्थमें प्रत्यक्षादिक प्रमाणसे बाधित न हो, क्योंकि ऐसा न होनेसे वह्निमें प्रत्यक्षसे बाधित ठंढापन भी साध्य होने लगेगा। और जिसमें संदेहादि पैदा हो रहे हों, क्योंकि ऐसा न होने से अर्थात् जिसमें किसी प्रकारका संदेह वगैरह नहीं है, फिर भी यदि वह साध्य कहलाने लगें, तब तो अनुमान ज्ञान व्यर्थ ही पड़ जायगा, क्योंकि जिसमें शक (संदेह) ही नहीं उसके सिद्ध करनेके लिये अनुमानकी क्या आवश्यकता? संदेहादिकके दूर करनेके लिये ही तो अनुमान किया जाता था। इसलिये जिसको वादी लोग सिद्ध करना चाहते हों और जिसमें वर्तमान कालमें शक पैदा हो रहा हो, परन्तु उसके वास्तव होनेमें कोई प्रत्यक्षादि प्रमाणसे बाधा न आती हो, उसहीको साध्य कहते हैं। उसके ज्ञानको अनुमान कहते हैं। न कि केवल साधनके ज्ञानको, कारण कि जिसका ज्ञान होता है उस ज्ञानसे उस हीका अज्ञान हटता है न कि दूसरेका, इसलिये साधनके ज्ञान-

से साधनका अज्ञान हट जायगा न कि अग्निका, इसलिये साधन-सें साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। इस अनुमान ज्ञान-के पैदा होनेकी परिपाटी वं क्रम यों है–जब कोई आदमी धूम और अग्निको रसोईघर, अथाई व और अनेक जगहोंमें बार बार एक ही साथ देखता है, तो वह निश्चय कर लेता है कि धूम और अग्नि एक ही साथ होती है। परन्तु उसके साथ ही साथ, उसनें एक या दो जगह ऐसा भी देखा कि वहाँ केवल अग्नि है और धूम नहीं, तब उसे निश्चय होता है कि ओह! जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि जरूर ही होती है, परन्तु जहाँ जहाँ अग्नि होती है वहाँ वहाँ धूम होता भी है और नहीं भी होता है, इस तरहके ज्ञान होनेके बाद, उसे जब कभी किसी जगह केवल धूम दिखाई देता और अग्नि दिखाई नहीं देती, उस जगह वह व्याप्ति (जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है) को स्मरण करता है और फिर अनुमान करता है कि " यहाँ कहीं अग्नि होनी चाहिये अन्यथा यदि यहाँ अग्नि न होती तो धूम क्यों दिखता " बस ऐसे ही (साधनसे साध्यके ज्ञान को) ज्ञानको अनुमान कहते हैं। इस अनुमान ज्ञानके दो भेद हैं एक स्वार्थानुमान दूसरा परार्थानुमान। किसी दूसरे परोपदेशादिककी अपेक्षा न रखते हुए, स्वयं-अपने आप निश्चय किये हुए और पहले तर्क ज्ञानके द्वारा अनुभव किये हुए, साध्यसाधनकी व्याप्तिको स्मरण करते हुए, अविनाभावी धूमादिक हेतुके द्वारा किसी पर्वत आदिक धर्मीमें उत्पन्न हुए अग्नि आदि साध्यके ज्ञानको स्वार्थानुमान कहते हैं। इसके तीन अंग हैं अर्थात् इस स्वार्थानुमान ज्ञानके होनेमें तीन पदार्थोंकी आवश्य-कता होती है धर्मी १, साध्य २, साधन ३। धर्मी उसे कहते हैं

साधनका साहचर्य है यहां दोनोंही एक साथ रहते हैं तथा यहांपर दोनोंही एक साथ नहीं रहते ' ऐसी वादी तथा प्रतिवादी दोनोंकी बुद्धिका साम्य हो जाय, दोनों इस बातको मानलें, उसे दृष्टान्त कहते हैं, इस दृष्टान्तके कहनेहीको उदाहरण कहते हैं. जैसे धूमके द्वारा वह्निकी सिद्धि करनेके लिये रसोईघर तथा तालाब आदिका कहना । दृष्टान्त दो तरहके हैं—एक अन्वय दृष्टान्त, दूसरा व्यतिरेक दृष्टान्त । जहां अन्वय व्याप्ति यानी साधनकी मौजूदगीमें साध्यकी मौजूदगी दिखाई जाय उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं—जैसे धूमसे वन्हिकी सिद्धि करनेके लिये रसोईघर, यहां धूमकी मौजूदगीमें अग्निकी मौजूदगी दिखाई गई है । जहां व्यतिरेक व्याप्ति यानी साध्यकी गैरमौजूदगीमें साधनकी गैरमौजूदगी दिखाई जाय उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं, जैसे धूमसे वन्हिकी सिद्धि करनेके लिये तालाव, यहां अग्निकी गैरमौजूदगीमें धूमकी गैरमौजूदगी दिखाई गई है । इस तरह दृष्टान्तोंको द्विविध होनेसे इनके कहनेवाले वचनों (उदाहरणों) के दो भेद (साधर्म्योदाहरण, वैधर्म्योदाहरण) हैं । साध्यकी व्याप्ति विशिष्ट हेतुके रहनेकी अपेक्षा. दृष्टान्त और पक्षमें समानता दिखलानेवालेको उपनय कहते हैं; जैसे " तथाचायम् ।" जैसे कि रसोईघर धूमवाला है उसही तरह यह पर्वतभी धूमवाला है । हेतुको दिखाते हुए प्रतिज्ञाके दुहरानेको—हेतुकी सामर्थ्यसे नतीजेके निकालनेको निगमन कहते हैं; जैसे कि "**तस्मादग्निमान्**" धूमवाला होनेकी वजहसे अग्निवाला है । इस प्रकार अपने आप निश्चय किये हुए हेतुसे पैदा होनेवाले साध्यके ज्ञानको स्वार्थानुमान और दूसरेके उपदेशसे जाने हुएसे पैदा होनेवाले साध्यके ज्ञानको परार्थानुमान कहते हैं । जिस हेतुसे

साध्यका ज्ञान होता है वह यदि सच्चा-निर्दोष (साध्यके विना न होने रूप हेतुके लक्षणसे विशिष्ट) है तब उससे पैदा होने-वाला साध्यका ज्ञान यानी अनुमान सदनुमान बोला जायगा और यदि मिथ्या-सदोष-साध्याविनाभावित्व रूप हेतुके लक्षणसे रहित है तब उससे पैदा होनेवाला साध्यका ज्ञान अनुमानाभास बोला जायगा। न कि अनुमान, इसलिये सच्चे और मिथ्या हेतुका निरूपण किया जाता है। सच्चे-निर्दोष हेतुओंको हेतु कहते हैं और मिथ्या सदोष हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। "अन्यथानुपपत्त्येक लक्षणं लिंगमभ्यते।" जो साध्यके विना न पाया जाय उसे सद्धेतु कहते हैं, और जिन हेतुमें ऊपर कहा हुआ लक्षण न पाया जाय परन्तु नैयायिकों आदि विरोधियोंके द्वारा हेतु सरीखा मालूम हो उसे हेत्वा-भास कहते हैं। उसके यद्यपि बहुत भेद हैं परन्तु मूल चार भेद हैं-१, असिद्ध २ विरुद्ध, ३ अनैकान्तिक (व्यभिचारी), ४ अकिञ्चित्कर इन्होंमें अन्य हेत्वाभासोंका यथासम्भव अंतर्भाव हो जाता है। जिस हेतुके स्वरूपके सद्भावका अनिश्चय अथवा संदेह हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं; जैसे " शब्द नित्य है क्योंकि नेत्रका विषय है," यहां पर " नेत्र का विषय " यह हेतु है; यह स्वरूपहीसे शब्दमें नहीं रहता, कारण कि शब्द तो कर्णका विषय है नेत्र-का नहीं है इसलिये " नेत्रका विषय " यह हेतु स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है. इसही तरह जहां धूम और बाष्प (बाफ) का निश्चय नहीं, वहांपर किसीने कहा "यहां अग्नि है कारण कि यहां धूम है." अब यहांपर कहा गया जो धूम हेतु है वह संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास है, कारण कि धूमके (जिसको कि हेतु बनाया है) स्वरूपमें संदेह है। साध्यसे विरुद्ध पदार्थके साथ जिस हेतु की व्याप्ति हो

उसको विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं; जैसे " शब्द नित्य है क्योंकि परिणामी है; " यहाँपर " परिणामित्व " हेतुकी व्याप्ति साध्य—नित्यत्वके साथ न होकर उससे विरुद्ध अनित्यत्वके साथ है क्योंकि जो जो परिणामी होते हैं वे अनित्य होते हैं, नित्य नहीं; इसलिये यह हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है । जो हेतु पक्ष (जहाँ साध्यके रहनेका शक हो) सपक्ष (जहां साध्यके सद्भावका निश्चय हो) विपक्ष (जहाँ साध्यके अभावका निश्चय हो) इन तीनोंमें रहे उसको अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास कहते हैं; जैसे " इस पर्वतमें धूम है क्योंकि यहाँ अग्नि है. " यहाँपर " अग्निमत्व " हेतु, पक्ष—पर्वत, सपक्ष—रसोईघर, विपक्ष—अंगारा इन तीनोंमें रहता है; इसलिये यह हेतु अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास है. जो हेतु, साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ न हो; उसे अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहते हैं. उसके दो भेद हैं—एक सिद्धसाधन दूसरा बाधितविषय । सिद्धसाधन उसे कहते हैं जिस हेतुका साध्य, साध्यकी सिद्धि करनेके पहले ही सिद्ध हो । जैसे " अग्नि गर्म है क्योंकि छूनेसे ऐसा ही (गर्म) माळूम होता है. " यहाँ अग्निमें गर्माई सिद्ध करनेके लिए दिये गये " छूनेसे ऐसाही माळूम होता है. " हेतुका साध्य—अग्निमें गर्माई पहलेहीसे सिद्ध है इसलिये अनुमान करनेसे कुछ भी फायदा न हुआ । जिस हेतुके साध्यमें दूसरे प्रमाणसे बाधा आवे उसे बाधितविषय हेत्वाभास कहते हैं । उसके प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, स्ववचनबाधित आदि अनेक भेद हैं । प्रत्यक्षबाधित उसे कहते हैं जिसके साध्यमें प्रत्यक्षसे बाधा आवे; जैसे " अग्नि ठंडी है क्योंकि यह द्रव्य है " । यहाँ " द्रव्यत्व " यह हेतु प्रत्यक्षबाधित है, क्योंकि अग्नि प्रत्यक्षसे ठंडीकी बजाय गर्म माळूम होती

है । अनुमानवाधित उसे कहते हैं जिसके साध्यमें अनुमानसे वाधा आवे; जैसे " घास आदि कर्ताकी वनाई हुई हैं क्योंकि यह कार्य है. " परन्तु इस अनुमानसे वाधा आती है कि " घास आदि कर्ताकी वनाई हुई नहीं हैं क्योंकि इनका वनानेवाला शरीरधारी नहीं है । जो जो शरीरधारीकी वनाई हुई नहीं हैं वे वे वस्तुएँ कर्ताकी वनाई हुई नहीं है, जैसें आकाश " । आगमवाधित उसे कहते हैं जिसके साध्यमें आगम कहिये शास्त्रसे वाधा आवे । जैसे " पाप सुखका देनेवाला है क्योंकि यह कर्म है जो जो कर्म होते हैं वे वे सुखके देनेवाले होतें हैं । जैसे पुण्यकर्म. " इसमें शास्त्रसे वाधा आती है क्योंकि शास्त्रमें पापको दुःखका देनेवाला लिखा है । स्ववचन-वाधित उसको कहते हैं जिसके साध्यमें अपनें वचनसे वाधा आवें । जैसे " मेरी माता वंध्या है क्योंकि पुरुषका संयोग होनेपर भी उसके गर्भ नहीं रहता । " इसमें अपने वचनसे ही वाधा आती है । यदि तेरी माता वंध्यां हैं तो तूं कहांसे पैदा हुआ है और पैदा हुआ है तो वंध्यां कैसी ? इसलियें ऐसें हेत्वाभासोंसे भिन्न समीचीन हेतुसे साध्यके ज्ञानको अनुमानप्रमाण कहतें हैं ।

आप्त—यथार्थ वोलनेवाले (यथार्थ वोलनेवाले ऐसा कहनेसे ही वह सर्वज्ञवीतराग होना चाहिये कहा गया क्योंकि जो यदि आप्त सर्वज्ञ—सर्व पदार्थोंका जाननेवाला न होगा तो वह कितने एक अतीन्द्रियपदार्थोंके न जाननेकी वजहसे विपरीत भी वोल सकता है और यदि वीतराग न होगा तो भी राग, द्वेष, लोभादिककी वजहसे अन्यथा भी निरूपण कर सकता है । इसलिये सर्वज्ञ वीतराग (यथार्थ वोलनेवाले) के वचन व इशारे वगैरहसे उत्पन्न हुए पदार्थके ज्ञानको

आगमप्रमाण कहते हैं। इस प्रकार प्रमाणके निरूपण होनेके अनन्तर नयके स्वरूपका विवेचन किया जाता है।

प्रत्येक वस्तुमें अनंत धर्म पाये जाते हैं; इस कारण वस्तुको अनेकधर्मात्मक व अनेकान्तात्मक (धर्म व अन्त इनका एकही अर्थ है) कहते हैं. अर्थात् वस्तु कथञ्चित् नित्य है कथञ्चित् अनित्य है. कथञ्चित् एक है कथञ्चित् अनेक है, कथञ्चित् सर्वगत है कथञ्चित् असर्वगत है, इत्यादि अनेक धर्मविशिष्ट है. यदि वस्तु सर्वथा नित्य हो तो वृक्षसे फलपुष्पादिककी अनुत्पत्तिका प्रसंग आवेगा अथवा सर्वथा अनित्यही हो तो प्रत्यभिज्ञान (यह वही है, जो पहले था) के अभावका प्रसङ्ग आवेगा अथवा सर्वथा नित्य माननेसे वस्तु अर्थक्रियाकारी सिद्ध नहीं हो सकती और जो अर्थक्रियारहित कूटस्थ है वह वस्तुही नहीं हो सकती, इत्यादि अनेक दोष आवेंगे. इस कारण वस्तु अनेकान्तात्मक ही है। ज्ञान दो प्रकारका है—एक स्वार्थ और दूसरा परार्थ। जो परोपदेशके विना स्वयं हो उसको स्वार्थ कहते हैं और जो परोपदेशपूर्वक हो उसको परार्थ कहते हैं। मति, अवधि, मनःपर्यय, केवल ये चारों ज्ञान स्वार्थही हैं और श्रुतज्ञान स्वार्थभी है और परार्थभी है। जो श्रुतज्ञान श्रोत्रविना अन्य इंद्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक होता है वह स्वार्थ श्रुतज्ञान है, और जो श्रोत्रेन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक होता है वह परार्थश्रुतज्ञान है। भावार्थ—अनंत गुणोंके अखंड पिंडको द्रव्य कहते हैं. गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई जुदा पदार्थ नहीं है इसलिये उसका निरूपण गुणवाचक शब्दके विना नहीं हो सकता। इसलिये अस्तित्व आदि अनेक गुणोंके समुदायरूप एक द्रव्यका निरंशरूप समस्तपनेसे अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचार कर एक

नयके मूलभेद दो हैं; एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय। इसही व्यवहारनयका दूसरा नाम उपनय है। " निश्चयमिहभूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थं " इस वचनसे निश्चयका लक्षण भूतार्थ और व्यवहारका लक्षण अभूतार्थ है। अर्थात् जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, यह निश्चयनयका विषय है। और एक पदार्थको परके निमित्तसे व्यवहारसाधनार्थ अन्यरूप कहना व्यवहारनयका विषय है।

निश्चयनयके दो भेद हैं; एक द्रव्यार्थिक, और दूसरा पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नयका लक्षण कार्तिकेयस्वामीने इस प्रकार कहा है:—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं।
णाणा जुत्तिवलादो दव्वत्थो सो णओ होदि॥

अर्थात् जो विशेष स्वरूपसे अविनाभावी सामान्य स्वरूपको नाना युक्तिके वलसे साधन करता है, उसको द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

भावार्थ—द्रव्य नाम सामान्यका है, और वस्तुमें सामान्य और विशेष दो प्रकारके धर्म होते हैं। उनमेंसे विशेष स्वरूपोंको गौण करके जो सामान्यका मुख्यतासे ग्रहण करता है, सो द्रव्यार्थिक नय है। और इससे विपरीत पर्यायार्थिकनय है। अर्थात् पर्याय नाम विशेषका है; सो जो वस्तुके सामान्य स्वरूपको गौण करके विशेष स्वरूपका मुख्यतासे ग्रहण करता है, उसको पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके दो दो भेद हैं। अध्यात्मद्रव्यार्थिक, अध्यात्मपर्यायार्थिक, शास्त्रीयद्रव्यार्थिक

और **शास्त्रीयपर्यायार्थिक** । इनमेंसे अध्यात्मद्रव्यार्थिकके दश भेद, और अध्यात्मपर्यायार्थिकके छह भेद हैं । शास्त्रीयद्रव्यार्थिकके तीन भेद; **१ नैगम, २ संग्रह,** और **३ व्यवहार** हैं । जिनमें भी नैगमके तीन भेद, संग्रहके दो भेद, व्यवहारके दो भेद, इस प्रकार शास्त्रीय-द्रव्यार्थिकके सब सात भेद हुए । शास्त्रीयपर्यायार्थिकके चार भेद हैं । **१ ऋजुसूत्र, २ शब्द, ३ समभिरूढ,** और **एवंभूत** । इनमें भी ऋजुसूत्र नयके दो भेद और शेष तीनोंके एक एक । सब मिलकर शास्त्रीयपर्यायार्थिकके पांच भेद हुए । इस प्रकार शास्त्रीयनयके बारह भेद और अध्यात्मके सोलह भेद सब मिलकर निश्चयनयके कुल अट्ठाईस भेद हुए । व्यवहारनयके मूलभेद तीन **१ सद्भूत, २ असद्भूत,** और **३ उपचरित** । इसमें भी सद्भूतके दो, असद्भूतके तीन और उपचरितके तीन भेद, इस प्रकार व्यवहारनयके सब मिलकर आठ भेद हुए । इसमें निश्चयनयके अट्ठाईस भेद मिलानेसे नयके कुल ३६ भेद हुए । अब इनके भिन्न भिन्न लक्षण इस प्रकार जानने चाहिये ।

सबसे पहले अध्यात्मद्रव्यार्थिकके दश भेदोंके लक्षण कहते हैं:—

१ जो कर्मबन्धसंयुक्त संसारी जीवको सिद्धसदृश शुद्ध ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधिनिरपेक्ष-शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय** कहते हैं । जैसे,—संसारी जीव सिद्धसदृश शुद्ध हैं ।

२ जो उत्पादव्ययको गौण करके केवल सत्ताका ग्रहण करता है, उसको **सत्ताग्राहक-शुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं । जैसे,—द्रव्य नित्य है ।

३ गुणगुणी और पर्यायपर्यायीमें भेद न करके जो द्रव्यको गुण-पर्यायसे अभिन्न ग्रहण करता है उसको भेद विकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक कहते हैं जैसे—अपने गुणपर्यायसे द्रव्य अभिन्न है ।

४ जो जीवमें क्रोधादिक भावोंका ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधि-सापेक्ष-अशुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,—जीवको क्रोधी मानी मायावी लोभी आदि कहना।

५ जो उत्पादव्ययमिश्रित सत्ताको ग्रहण करके एकसमयमें त्रितयपनेको ग्रहण करता है, उसको **उत्पादव्ययसापेक्ष-अशुद्ध-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,—द्रव्य एक समयमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्ययुक्त है।

६ जो द्रव्यको गुणगुणी आदि भेदसहित ग्रहण करता है, उसको **भेदकल्पना-सापेक्ष-अशुद्धद्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,—दर्शनज्ञान आदि जीवके गुण हैं।

७ समस्त गुणपर्यायोंमें जो द्रव्यको अन्वयरूप ग्रहण करता है, उसको **अन्वय-द्रव्यार्थिक** कहते हैं। जैसे,—द्रव्य गुणपर्याय स्वरूप है।

८ जो स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्यको सत्स्वरूप ग्रहण करता है, उसको **स्वद्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिक** नय कहते हैं। जैसे,—स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य है।

९ जो परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्यको असत्स्वरूप ग्रहण करता है, उसको **परद्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिक** नय कहते हैं। जैसे,—परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नहीं है।

१० जो अशुद्धशुद्धोपचाररहित द्रव्यके परमस्वभावको ग्रहण करता है, उसको **परमभावग्राही-द्रव्यार्थिक** नय कहते हैं। जैसे,—जीवके अनेक स्वभाव हैं, उनमेंसे परमभावज्ञानकी मुख्यतासे जीवको ज्ञानस्वरूप कहना।

ये द्रव्यार्थिक नयके दश भेद हो चुके । अब पर्यायार्थिक नयके छह भेदोंके लक्षण और उदाहरण सुनिये:—

१ जो अनादिनिधन चन्द्रसूर्यादि पर्यायोंको ग्रहण करता है, उसको **अनादि-नित्य-पर्यायार्थिक** नय कहते हैं । जैसे,—मेरु, पुद्गलकी नित्य पर्याय है ।

२ कर्मक्षयसे उत्पन्न और कारणभावसे अविनाशी पर्यायको जो ग्रहण करता है, उसको **आदि-नित्य-पर्यायार्थिक** नय कहते हैं । जैसे,—जीवकी सिद्धपर्याय नित्य है ।

३ जो सत्ताको गौण करके उत्पादव्यय स्वभावको ग्रहण करता है, उसे **अनित्य-शुद्ध-पर्यायार्थिक** नय कहते हैं । जैसे,—पर्याय प्रतिसमय विनश्वर है ।

४ जो पर्यायको एक समयमें उत्पादव्यय और ध्रौव्य स्वभावयुक्त ग्रहण करता है, उसको **अनित्यअशुद्धपर्यायार्थिक नय** कहते हैं । जैसे पर्याय एक समयमें उत्पाद-व्यय ध्रौव्य स्वरूप है ।

५ जो संसारी जीवोंकी पर्यायको सिद्धसदृश शुद्ध पर्याय ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधि निरपेक्षअनित्यशुद्धपर्यायार्थिक** नय कहते हैं । जैसे,—संसारी जीवकी पर्याय सिद्धसदृश शुद्ध है ।

६ जो संसारी जीवोंकी चतुर्गति सम्बन्धी अनित्य अशुद्ध पर्यायको ग्रहण करता है, उसको **कर्मोपाधिसापेक्षअनित्यअशुद्ध-पर्यायार्थिक** नय कहते हैं । जैसे,—संसारी जीव उत्पन्न होते हैं, और विनाशमान होते हैं ।

ये पर्यायार्थिक नयके छह भेद हुए । अब नैगमनयके तीनों भेदोंके लक्षण इस प्रकार है:—

१ जहां अतीतमें वर्तमानका आरोपण होता है, उसको **भूत-नैगम** कहते हैं । जैसे,—आज दीपोत्सवके दिन महावीर भगवान् मोक्षको गये ।

२ जहां भावीमें भूतवत् कथन होता है उसको **भावीनैगमनय** कहते हैं । जैसे अर्हन्तोंको सिद्ध कहना ।

३ जिस कार्यका प्रारंभ कर दिया जाता है और उसमेंसे एक देश तय्यार हुआ हो अथवा बिलकुल तय्यार नहीं हुआ हो उसको तय्यार हुआ ऐसा कहना **वर्तमान नैगमनय**का विषय है । जैसे कोई पुरुष रसोई करनेके निमित्त, भातके लिये चांवल साफ कर रहा है, अथवा किसीने भात बनानेकेवास्ते चांवल अग्निपर चढ़ा दिये हैं परन्तु अभी भात तय्यार नहीं हुआ है, किसीने आनकर पूछा कि, महाशय कहिये आज क्या बनाया? तब वह उत्तर देता है कि, "भात बनाया" ।

१ सत् सामान्यकी अपेक्षासे समस्त द्रव्योंको जो एक रूप ग्रहण करता है उसको **सामान्यसङ्ग्रहनय** कहते हैं, जैसे सर्व द्रव्य सत्की अपेक्षासे परस्पर अविरुद्ध हैं ।

२ जो एक जाति विशेषकी अपेक्षासे अनेक पदार्थोंको एक रूप ग्रहण करता है उसको **विशेषसङ्ग्रहनय** कहते हैं, जैसे चेतनाकी अपेक्षासे समस्त जीव एक हैं ।

१ जो सामान्य सङ्ग्रहके विषयको भेद रूप ग्रहण करता है उसको **शुद्धव्यवहारनय** कहते हैं—जैसे द्रव्यके दो भेद हैं, जीव और अजीव ।

२ जो विशेष सङ्ग्रहके विषयको भेदरूप ग्रहण करता है उसको

अशुद्धव्यवहारनय कहते हैं, जैसे संसारी और मुक्त जीवके भेद हैं।

१ जो एक समयवर्ती सूक्ष्म अर्थपर्यायको ग्रहण करता है उसको **सूक्ष्मऋजुसूत्रनय** कहते हैं, जैसे सर्व शब्द क्षणिक हैं।

२ अनेक समयवर्ती स्थूलपर्यायको जो ग्रहण करता है उसको **स्थूलऋजुसूत्रनय** कहते हैं, जैसे मनुष्यादि पर्याय अपनी आयु प्रमाण तिष्ठे हैं।

१ **शब्दनयका** लक्षण **देवसेन स्वामीने** वड़े नयचक्रमें इस प्रकार कहा है।

गाथा—जो वट्टणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिंगआईणं॥
सो सद्दणओ भणिओ णेउंपुंसाइयाण जहा॥ १॥
अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थ ववहरणं॥
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जह देओ॥ २॥

इन दोनों गाथाओंका अभिप्राय यह है कि, एक पदार्थमें भिन्न लिंगादिककी स्थितिको जो नहीं मानता है उसको शब्द नय कहते हैं. भावार्थ—स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिङ्ग, आदि शब्दसे एक वचन, द्विवचन, वहुवचन, संख्या, काल, कारक, पुरुष, उपसर्गका ग्रहण करना, एकही पदार्थके वाचक अनेक शब्द होते हैं और उनमें लिङ्ग संख्यादिकका विरोध होता है, जैसे पुष्य, तारका, नक्षत्र, ये तीनों लिङ्गके शब्द एकही ज्योतिष्कविमानके वाचक हैं, सो इनमें परस्पर व्यभिचार हुआ. परन्तु शब्दनय इस व्यभिचारको नहीं मानता है अथवा व्याकरणसे भिन्न लिङ्गादि युक्त जो शब्द सिद्ध हैं वे जो कुछ अर्थ व्यवहरण करै सोही शब्द नयका विषय है। अर्थात् जो शब्दका वाच्य है उसही स्वरूप पदार्थको भेद रूप मानना शब्दनयका विषय

है। इन दोनों गाथाओंका चरितार्थ एकही है किंतु कथनशैली भिन्न २ है उसका खुलासा इस प्रकार है कि, संसारमें जितने शब्द हैं उतनेही परमार्थरूप पदार्थ हैं, ऐसाही **कार्तिकेय स्वामीने** कहा है.

गाथा—किंबहुना उत्तेणय जित्तिय मेत्ताणि संति णामाणि
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था ॥१॥

फिर जो संसारमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द दिखाई देते हैं जैसे इन्द्र, पुरन्दर, शक्र, जल, अप्, भार्या, कलत्र। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक पदार्थमें अनेक शक्ति हैं और एक एक शब्द एक एक शक्तिका वाचक है इसही कारणसे भिन्न लिङ्ग संख्यादि वाचक अनेक शब्दोंका एक पदार्थमें पर्यवसान होना सदोष नहीं हो सकता अर्थात् इसमें व्यभिचार नहीं है। किन्तु जो जो शब्द जिस जिस शक्तिके वाचक हैं उन उन शक्तिरूप उस पदार्थको भेदरूप मानना यही शब्दनयका विषय है.

१ एक शब्दके अनेक वाच्य है उनमेंसे एक मुख्य वाच्यको किसी एक पदार्थमें देख उसपर आरूढ हो उस पदार्थके अन्य क्रियारूप परिणत होनेपरभी उस पदार्थको अपना वाच्य माने यह **समभिरूढ नयका** विषय है। जैसे गो शब्दके अनेक अर्थ हैं, उनमेंसे एक अर्थ गतिमत्व है। यह गतिमत्व मनुष्य, हस्ती, घोटक, वलध इत्यादि अनेक पदार्थोंमें है किन्तु वलध पदार्थमेंही आरूढ होकर उस वलधको सोते बैठते आदि अन्य क्रिया करने परभी गो शब्दका वाच्य मानना यही समभिरूढ नयका विषय है।

१ जिस क्रियावाचक जो शब्द उसही क्रियारूप परिणत पदार्थको ग्रहण करै उसको **एवंभूतनय** कहते हैं। जैसे गौ जिस कालमें गमन

करै उसही कालमें उसको गो कहे अन्य क्रिया करते हुए उसे गो न कहे यही एवंभूतनयका विषय है।

शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीन नय शब्दकी प्रधानता लेकर प्रवर्तें हैं इस कारण इनको **शब्दनय** कहते हैं और नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थकी प्रधानता लेकर प्रवर्तें हैं इस कारण इनको अर्थनय कहते हैं। इस प्रकार निश्चय-नयके २८ भेदोंका कथन समाप्त हुआ। अब आगे व्यवहारनयके आठ भेदोंके लक्षण कहते हैं।

१ एक द्रव्यमें गुण गुणी, पर्याय पर्यायी, कारक कारकवान्, स्वभाव स्वभाववान्, इत्यादि भेदरूप कल्पना करना **शुद्धसद्भूत-व्यवहारनय**का विषय है।

२ अखंड द्रव्यको वहुप्रदेशरूप कल्पना करना **अशुद्धसद्भूत-व्यवहारनय**का विषय है।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोपण करना **असद्भूत-व्यवहारनय**का विषय है, उसके तीन भेद हैं।

३ **सजात्यसद्भूतव्यवहार**।

४ **विजात्यसद्भूतव्यवहार**।

५ **स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहार**।

इन तीनोंमेंसे प्रत्येकके नौ, नौ भेद होते हैं। अर्थात् १ द्रव्यमें द्रव्यका समारोप, २ द्रव्यमें गुणका समारोप, ३ द्रव्यमें पर्यायका समारोप, ४ गुणमें गुणका समारोप, ५ गुणमें द्रव्यका समारोप, ६ गुणमें पर्यायका समारोप, ७ पर्यायमें पर्यायका समारोप, ८ पर्यायमें गुणका समारोप, ९ और पर्यायमें द्रव्यका समारोप. जैसे चन्द्रमाँके

प्रतिबिंबको चन्द्रमाँ कहना यहां सजाति पर्यायमें सजाति पर्यायका समारोप है. मतिज्ञानको मूर्त्तक कहना यहां विजाति गुणमें विजाति गुणका समारोप है. जीवाजीवस्वरूप ज्ञेयको ज्ञानका विषय होनेसे ज्ञान कहना सजातिविजातिद्रव्यमें सजातिविजातिगुणका समारोप है. परमाणुको बहुप्रदेशी कहना यहां सजातिद्रव्यमें सजातिविभावपर्यायका समारोप है. इसही प्रकार अन्य उदाहरण समझने चाहिये. अगर कोई यहां शंका करे कि, यह असद्भूतव्यवहार मिथ्या है, सो यह शंका निर्मूल है. जगत्का व्यवहार इस नयके विना कदापि नहीं चल सकता और यह बात अनुभवसिद्ध है. किसी पुरुषने अपने लड़केसे कहा कि, घीका घड़ा लाओ तो यह सुनतेही वह लड़का तुरन्त घीसे भरा हुआ मिट्टीका अथवा तांबे, पीतलका घड़ा उठा लाता है. यदि यह नय मिथ्या होती तो उस लड़केको उपर्युक्त अर्थज्ञान किस प्रकार हुआ ?

अब **उपचरितव्यवहारनयका** लक्षण कहते हैं । इसको उपचरितासद्भूतव्यवहारनयभी कहते हैं ।

उवयारा उवयारं सच्चा सच्चे सु उहय अत्थेसु ॥
सज्जाइ इयर मिस्से उवयरिओ कुणइ ववहारो ॥ १ ॥

अथवा मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते सोपि संबन्धाविनाभावः अर्थात् सत्य, असत्य, उभयरूप, सजातिविजाति मिश्र पदार्थोंमें उपचारोपचार करे सो उपचरितासद्भूत व्यवहारनय है । भावार्थ—मुख्य पदार्थका अनुभव होते हुए प्रयोजन और निमित्तके वशतें इस नयकी प्रवृत्ति होती है । प्रयोजनका अभिप्राय व्यवहारसिद्धि और निमित्तका अभिप्राय विषयविषयी, परिणामपरिणामी, कार्यकारण आदि संबन्ध है ।

६ मित्र पुत्रादि वन्धुवर्ग मेरे हैं यह **सजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय**का विषय है ।

७ आभरण हेम रत्नादिक मेरे हैं यह **विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय**का विषय है ।

८ देश राज्य दुर्गादिक मेरे हैं यह **मिश्रोपचरितासद्भूतव्यवहारनय**का विषय है। इस प्रकार यह व्यवहार नयके आठ भेदोंका कथन हुआ और निश्चय नयके २८ भेदोंका कथन पहिले कर चुके इस प्रकार नयके सब ३६ भेदोंका कथन समाप्त हुआ। अव किसी आचार्यने अध्यात्म भाषासे नयके भेदोंका स्वरूप लिखा है उसे लिखते हैं ।

नयके मूल भेद दो हैं एक **निश्चय** दूसरा **व्यवहार** ।

१ जिसका अभेदरूप विषय है उसको **निश्चयनय** कहते हैं ।

२ जिसका भेदरूप विषय है उसको **व्यवहारनय** कहते हैं ।

निश्चयनयके दो भेद हैं, एक **शुद्धनिश्चयनय** दूसरा **अशुद्धनिश्चयनय** ।

१ जो निरूपाधिक गुण गुणीको अभेद रूप ग्रहण करता है उसको **शुद्धनिश्चयनय** कहते हैं. जैसे जीव केवलज्ञानस्वरूप है ।

२ जो सोपाधिक गुण गुणीको अभेदरूप ग्रहण करता है उसको **अशुद्धनिश्चयनय** कहते हैं जैसे जीव मतिज्ञानस्वरूप है ।

व्यवहार नयके भी दो भेद हैं एक **सद्भूतव्यवहारनय** और दूसरा **असद्भूतव्यवहारनय** ।

जो एक पदार्थमें गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **सद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं. उसके भी दो भेद हैं, एक **उपचरितसद्भूत** दूसरा **अनुपचरितसद्भूत** ।

३ जो सोपाधिक गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **उपचरितसद्भूतव्यवहार** कहते हैं, जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं।

४ जो निरुपाधिक गुण गुणीको भेदरूप ग्रहण करता है उसको **अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं, जैसे जीवके केवलज्ञानादिक गुण हैं।

जो भिन्न पदार्थको अभेद रूप ग्रहण करता है उसको **असद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। उसके भी दो भेद हैं, एक **उपचरितासद्भूतव्यवहार** दूसरा **अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय**।

५ जो संश्लेषरहित वस्तुको अभेद रूप ग्रहण करता है उसे **उपचरितासद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं, जैसे आभरणादिक मेरे हैं।

६ जो संश्लेषरहित वस्तुको अभेदरूप ग्रहण करता है उसे **अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं, जैसे शरीर मेरा है।

यद्यपि ये छह भेद किसी आचार्यने अध्यात्म सम्बन्धमें संक्षेपसे कहे हैं, परन्तु ये छह भेद प्रथम कहे हुए ३६ भेदोंमेंसे किसी न किसी भेदमें गर्भित हो जाते हैं; अर्थात् शुद्ध निश्चयनय भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकमें, अशुद्धनिश्चयनय कार्मोपाधिसापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकमें, उपचरितसद्भूतव्यवहारनय अशुद्धसद्भूतव्यवहारनयमें, अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय शुद्धसद्भूतव्यवहारनयमें, अनुपचरित और उपचरितसद्भूतव्यवहारनय उपचरित (उपचरितासद्भूत) व्यवहारनयमें गर्भित है। इस प्रकार नयका कथन समाप्त हुआ।

अब आगे निक्षेपका कथन इस प्रकार है प्रथमही निक्षेप सामान्यका लक्षण कहते हैं।

गाथा—जुत्तीसुजुत्तमग्गे जंचउभेयेण होइ खलु ठवणं ।
कज्जे सदिणामादिसु तं णिक्खेवं हवे समए ॥

युक्ति करके सुयुक्तमार्ग होते हुए कार्यके वशतें नाम स्थापना द्रव्य और भावमें पदार्थके स्थापनको **निक्षेप** कहते हैं. भावार्थ—एक द्रव्यमें अनेक स्वभाव हैं. इसलिये अनेक स्वभावोंकी अपेक्षासे उसका विचारभी अनेक प्रकारसे होता है. अतएव उस द्रव्यके मुख्य चार भेद किये हैं. अर्थात् १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप, ४ भावनिक्षेप.

१ जिस पदार्थमें जो गुण नहीं है उसको उस नामसे कहना **नामनिक्षेप** है. जैसे किसीने अपने लडकेका नाम हाथीसिंह रक्खा है, परन्तु उस लडकेमें हाथी और सिंहके गुण नहीं है.

२ साकार अथवा निराकार पदार्थमें वह यह है इस प्रकार अवधान करके निवेश करना उसको **स्थापनानिक्षेप** कहते हैं. जैसे पार्श्वनाथके प्रतिविंबको पार्श्वनाथ कहना, अथवा पुष्पमें अर्हंतकी स्थापना करना, स्थापनानिक्षेपमें मूल पदार्थवत् सत्कार पुरस्कारकी प्रवृत्ति होती है, किन्तु नामनिक्षेपमें नहीं होती. जैसे किसीने अपने लडकेका नाम पार्श्वनाथ रखलिया तो उस लडकेका पार्श्वनाथवत् सत्कार पुरस्कार नहीं होता किन्तु प्रतिमामें होता है.

३ जो पदार्थ अनागतपरिणामकी योग्यता रखनेवाला होता है उसको **द्रव्यनिक्षेप** कहते हैं. जैसे राजाका पुत्र आगामी कालमें राजा होनेके योग्य है इस कारण राजपुत्रको राजाका द्रव्यनिक्षेप कहते हैं उस द्रव्यनिक्षेपके दो भेद हैं, एक आगमद्रव्यनिक्षेप और दूसरा नोआगमद्रव्यनिक्षेप ।

द्वितीय अधिकार ।

(द्रव्यसामान्यनिरूपण ।)

द्रव्यका सामान्य लक्षण पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है ।

गाथा—दवादि दविस्सादि दविदं जं सब्भावे विहावपज्जाए ॥
तं णह जीवो पोग्गल धम्माधम्मं च कालं च ॥१॥
तिक्काले जं सत्तं वट्टादि उप्पादवयधुवत्तेहिं ॥
गुणपज्जायसहावं अणादि सिद्धं खु तं हवे दव्वं ॥२॥

१ अर्थात् जो स्वभाव अथवा विभाव पर्यायरूप परिणमें है, परिणमेगा, और परिणम्या सो आकाश, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल भेदरूप द्रव्य है । अथवा २ जो तीन कालमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वरूपसत्कारिसहित होवे उसे द्रव्य कहते हैं. तथा ३ जो गुणपर्यायसहित अनादि सिद्ध होवे उसे द्रव्य कहते हैं । इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण कहे हैं. उनमेंसे पहला लक्षण द्रव्य शब्दकी व्युत्पत्तिकी मुख्यता लेकर कहा है. इस लक्षणमें स्वभाव-पर्याय और विभावपर्याय ये दो पद आये हैं, उनको स्पष्ट करनेके लिये प्रथमही पर्यायसामान्यका लक्षण कहते हैं ।

द्रव्यमें अंशकल्पनाको पर्याय कहते हैं. उस अंशकल्पनाके दो भेद कहे हैं—एक देशांशकल्पना, दूसरी गुणांशकल्पना ।

देशांशकल्पनाको द्रव्यपर्याय कहते हैं. यदि कोई यहां ऐसी शंका करै कि, जब गुणोंका समुदाय है सोही द्रव्य है, गुणोंसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये द्रव्यपर्यायभी कोई पदार्थ नहीं हो सकता । (समाधान) यद्यपि गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ

नहीं है, परन्तु समस्त गुणोंके पिण्डको देश कहते हैं और प्रत्येक गुण समस्त देशमें होता हैं, इस कारण देशके एक अंशमें समस्त गुणोंका सद्भाव है. ऐसी अवस्थामें उसको एक गुणकी पर्याय नहीं कह सकते; अर्थात् उस देशांशमें समस्त गुण हैं और समस्त गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं; इसलिये देशांशको द्रव्यपर्याय कहनाही समुचित होता है. गुणांशकल्पनाको गुणपर्याय कहते हैं. गुणपर्यायके दो भेद हैं—एक अर्थगुणपर्याय, दूसरा व्यंजनगुणपर्याय।

१ ज्ञानादिक भाववती शक्तिके विकारको **अर्थगुणपर्याय** कहते हैं।

२ प्रदेशवत्वगुणरूपक्रियावतीशक्तिके विकारको **व्यंजनगुणपर्याय** कहते हैं. इसही व्यंजनगुणपर्यायको द्रव्यपर्यायभी कहते हैं, क्योंकि व्यंजनगुणपर्याय द्रव्यके आकारको कहते हैं। सो यद्यपि यह आकार प्रदेशवत्वशक्तिका विकार है, इसलिये इसका मुख्यतासे प्रदेशवत्व-गुणसे संबंध होनेके कारण इसे व्यंजनगुणपर्यायही कहना उचित है. तथापि गौणतासे इसका देशकेसाथभी संबंध है; इसलिये देशांशको द्रव्यपर्यायकी उक्ति की तरह इसकोभी द्रव्यपर्याय कहसक्ते हैं। अब आगे जहां द्रव्यपर्याय अथवा व्यंजनपर्याय शब्द आवै, तो इन शब्दोंसे व्यंजनगुणपर्याय समझना; और गुणपर्याय अथवा अर्थपर्याय शब्दोंसे अर्थगुणपर्याय समझना. इन दोनोंके स्वभाव और विभावकी अपेक्षासे दो दो भेद हैं, अर्थात् १ स्वभावद्रव्यपर्याय, २ विभावद्रव्य-पर्याय, ३ स्वभावगुणपर्याय, ४ विभावगुणपर्याय।

जो निमित्तांतरके विना होवे उसे **स्वभाव** कहते हैं. और जो दूसरेके निमित्तसे होय उसको **विभाव** कहते हैं. जैसे कर्मरहित

शुद्ध जीवके जो ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य हैं वे जीवके **स्वभावगुणपर्याय** हैं. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, ये जीवके **विभावगुणपर्याय** हैं।

मुक्तजीवके जो अंतिम शरीरके आकार प्रदेश हैं सो जीवकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** है. संसारी जीवका जो शरीराकार परिणाम है उसको जीवकी **विभावद्रव्यपर्याय** कहते हैं।

परमाणुमें जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, होते हैं वे पुद्गलकी **स्वभावगुणपर्याय** हैं, स्कन्धोंमें जो स्पर्श रस गन्ध वर्ण होते हैं वे पुद्गलकी **विभावगुणपर्याय** हैं।

जो अनादिनिधन कार्यरूप अथवा कारणरूप पुद्गलपरमाणु है सो पुद्गलकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** है. पृथिवी, जलादिक जो नानाप्रकारके स्कंध हैं वे पुद्गलकी **विभावद्रव्यपर्याय** हैं. विभावपर्याय जीव और पुद्गलमेंही होती है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यमें स्वभावपर्यायही होती है, विभावपर्याय नहीं होती।

धर्मद्रव्यमें गतिहेतुत्व, अधर्मद्रव्यमें स्थितिहेतुत्व, आकाशद्रव्यमें अवगाहहेतुत्व, कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व **स्वभावगुणपर्याय** हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, और कालद्रव्य जिस जिस प्रकारसे संस्थित हैं वे उनकी **स्वभावद्रव्यपर्याय** हैं।

समस्त द्रव्योंमें अगुरुलघुगुणका जो परिणाम होता है, वे सब द्रव्योंकी **स्वभावगुणपर्याय** हैं।

आगे द्रव्यके दूसरे सत्लक्षणका स्वरूप लिखते हैं।

सत् सत्ता अस्तित्व ये तीनों द्रव्यकी एक शक्ति विशेषके वाचक हैं। गुणगुणीकी भेदविवक्षासे द्रव्यका लक्षण सत् है। और गुणगुणीकी अभेदविवक्षासे द्रव्य सन्मात्र है अर्थात् स्वतः सिद्ध है, अतएव अनादिनिधन स्वसहाय और निर्विकल्प है। ऐसा नहीं माननेसे १ असत्की उत्पत्ति, २ सत्का विनाश, ३ युतसिद्धत्व, ४ परतःप्रादुर्भाव, ये चार दोष उपस्थित होते हैं।

१ **असत्की उत्पत्ति** माननेसे द्रव्य अनंत हो जांयगे और मृत्तिकाके विना भी घटकी उत्पत्ति होने लगेगी।

२ **सत्का विनाश** माननेसे एक २ पदार्थका नाश होते २ कदाचित् सर्वाभावका प्रसङ्ग आवेगा।

३ **युतसिद्धत्व** माननेसे गुण और गुणीके पृथक्प्रदेशपना ठहरेगा और ऐसी अवस्थामें गुण और गुणी इन दोनोंके लक्षणके अभावका प्रसङ्ग आवेगा। और लक्षणकेविना वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सक्ता. इस कारण गुण और गुणी दोनोंके अभावका प्रसङ्ग आता है. भावार्थ—लक्षणके दो भेद हैं, एक अनात्मभूत दूसरा आत्मभूत. जो लक्ष्यसे अभिन्नप्रदेशवाला होता है उसको आत्मभूत कहते हैं, जैसे अग्निका उष्णपना। और जो लक्ष्यसे भिन्न प्रदेशवाला होता है उसको अनात्मभूत कहते हैं. जैसे पुरुषका लक्षण दण्ड. जिस प्रकार दण्ड लंबाई, गोलाई, चिकनाई आदि लक्षणोंसे भिन्न सत्तावाला सिद्ध है। और हस्तपादादि लक्षणोंसे पुरुष भिन्न सत्तावाला सिद्ध है। इस प्रकार अग्नि और उष्णताके भिन्न २ लक्षण न होनेके कारण भिन्न २ सत्तावाले सिद्ध नहीं होसक्ते. क्योंकि अग्निसे भिन्न उष्णता और उष्णतासे भिन्न अग्नि प्रतीति

अगोचर है। इसही प्रकार सत्द्रव्यका आत्मभूत लक्षण है, युतसिद्ध नहीं है। युतसिद्ध माननेमें अग्नि और उष्णताकी तरह द्रव्य और सत दोनोंके अभावका प्रसङ्ग आता है, अथवा थोड़ी देरकेलिये मानभी लिया जाय कि, गुण और गुणी भिन्न हैं अर्थात् जीव और ज्ञान भिन्न २ हैं. पीछे समवाय पदार्थके निमित्तसे दोनोंका संबंध हुआ है तो जीव और ज्ञानका संबंध होनेसे पहले जीव ज्ञानी था कि, अज्ञानी? यदि कहोगे कि, ज्ञानी था तो ज्ञानगुणका संबंध निष्फल हुवा। यदि अज्ञानी था तो अज्ञानगुणके संबंधसे अज्ञानी था अथवा स्वभावसे? यदि स्वभावसे अज्ञानी था तो स्वभावसे ज्ञानी माननेमें क्या हानि है? यदि अज्ञान गुणके संबंधसे अज्ञानी है तो अज्ञान गुणके संबंधसे पहले अज्ञानी था कि ज्ञानी? यदि अज्ञानी था तो अज्ञानगुणका संबंध निष्फल हुवा. यदि कहो कि, ज्ञानी था तो ज्ञान-का समवाय तो हैही नहीं! ज्ञानी किस प्रकार कह सकते हो? इसही प्रकार यदि जीवमें ज्ञानके सम्बन्धसे जाननेकी शक्ति है तो ज्ञानमें किसके सम्बन्धसे जाननेकी शक्ति है? यदि कहोगे कि, ज्ञानमें स्वभा-वसे जाननेकी शक्ति है तो जीवमें स्वभावसे जाननेकी शक्ति माननेमें क्या हानि है। यदि कहोगे कि, ज्ञानमें ज्ञानत्वके सम्बन्धसे जान-नेकी शक्ति है तो ज्ञानत्वमेंभी किसी दूसरेकी और उसमेंभी किसी औरकी आवश्यकता होनेसे अनवस्थादोष आवेगा. यदि यहां कोई इस प्रकार शंका करे कि, समवाय नामक अयुतसिद्धलक्षण सम्बन्ध है उसके निमित्तसे अभिन्नसदृश गुणगुणी प्रतीत होते हैं, ज्ञानत्वके समवायसे ज्ञानमें जाननेकी शक्ति है और ज्ञानगुणके समवायसे जीव ज्ञानी है। सोभी ठीक नहीं है. क्योंकि ऐसा कोई नियामक नहीं है कि, ज्ञानगुणका जीवसेही सम्बन्ध होय आकाशादिकसे न होय?

एक वस्तुकी जो स्वरूपसत्ता है वही दूसरीवस्तुकी स्वरूपसत्ता नहीं है. इसकारण अवान्तरसत्ताको " **अनेका** " कहते है ।

वस्तु न तो सर्वथा नित्य है और न सर्वथा क्षणिक है: जो वस्तुको सर्वथा नित्य मानिये तो प्रत्यक्षसे वस्तु विकारसहित दीखती है. इसकारण सर्वथा नित्य नहीं मान सकते और जो वस्तुको सर्वथा क्षणिक मानिये तो प्रत्यभिज्ञान (यह पदार्थ वही है जो पहिले था) के अभावका प्रसंग आवेगा इसकारण प्रत्यभिज्ञानको कारणभूत किसी स्वरूपकरके ध्रौव्यको अवलम्वन करनेवाली और क्रमप्रवृत्त किसी स्वरूपकरके उपजती और किसी स्वरूपकरके विनसती एकही काल तीन अवस्थाओंको धारण करनेवाली वस्तुको सत् कहते हैं अतएव महासत्ताकोभी " **उत्पादव्ययध्रौव्यात्मिका** " समझना। क्योंकि, भाव (सत्) और भाववान् (द्रव्य) में कदाचित् अभेद है वस्तु जिस स्वरूपसे उत्पन्न होती है उसस्वरूपसे उसका व्यय और ध्रौव्य नहीं है जिसस्वरूपसे वस्तुका व्यय है उसस्वरूपसे उत्पाद और ध्रौव्य नहीं हैं जिसस्वरूपसे ध्रौव्य है उसस्वरूपसे उत्पाद और व्यय नहीं है इसकारण अवान्तरसत्ता एक एक लक्षणस्वरूप नहीं है इसकारण उसे " **अत्रिलक्षणा** " कहते है सोई कुन्दकुन्दस्वामीने कहा है।

गाथा—सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
उप्पादवयधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एगा ॥ १ ॥

अब उत्पादव्ययं ध्रौव्यका विशेष स्वरूप लिखते है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्यके नहीं होते किन्तु पर्यायोंके होते हैं परन्तु पर्याय द्रव्यकाही स्वरूप है इस कारण द्रव्यको भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप कहा है। परिणमन स्वरूप द्रव्यकी नूतन अवस्थाको उत्पाद कहते हैं परन्तु यह उत्पादभी द्रव्यका स्वरूपही है इसकारण यहभी

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे सत् और असत् भावकरके निबद्ध है। व्ययभी द्रव्यका नहीं होता किन्तु वह व्यय द्रव्यकी अवस्थाका व्यय है इसकोही "प्रध्वंसाभाव" कहते हैं सो परिणामी द्रव्यके यह प्रध्वंसाभाव अवश्यही होना चाहिये। द्रव्यका ध्रौव्यस्वरूप है सो कथंचित् पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे है केवल द्रव्यकाही ध्रौव्य नहीं है किन्तु उत्पाद और व्ययकी तरह यह ध्रौव्यभी एक अंश है सर्वांश नहीं है पूर्वाचार्योंने जो "तद्भावाव्ययंध्रौव्यम्" यह ध्रौव्यका लक्षण कहा है उसकाभी स्पष्टार्थ यही है कि, जो परिणाम पहिले है वही परिणाम पीछे है जैसे पुष्पका गन्ध परिणाम है और वह गन्ध गुणभी परिणामी है अपरिणामी नहीं है परन्तु ऐसा नहीं है कि, पहिले पुष्पगन्धरहित था और पीछे गन्धवान् हुआ जो परिणाम पहिले था वही पीछे है इसहीका नाम ध्रौव्य है। इनमेंसे व्यय और उत्पाद यह दोनों अनित्यताके कारण हैं और ध्रौव्य नित्यताका कारण है। यहां कोई ऐसा समझे कि द्रव्यमें सत्व अथवा कोईगुण सर्वथा नित्य है और व्यय और उत्पाद ए दोनों उससे भिन्न परणतिमात्र हैं ऐसा नहीं है। क्योंकि, ऐसा होनेसे सब विरुद्ध होजाता है। प्रदेशभेद होनेसे न गुणकी सिद्धि होती है न द्रव्यकी

(1) जिनमतमें चार अभाव माने हैं. १ प्रागभाव. २ प्रध्वंसाभाव. ३ अन्योन्याभाव, और ४ अत्यंताभाव. द्रव्यकी वर्त्तमानसमयसम्बन्धी पर्यायका वर्तमानसमयसे पहिले जो अभाव है उसको प्रागभाव कहते हैं। तथा उसहीका वर्त्तमानसमयसे पीछे जो अभाव है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। द्रव्यकी एक पर्यायके सजातीय अन्यपर्यायमें अभावको अन्योऽन्याभाव कहते हैं और उसहीके विजातीयपर्यायमें अभावको अत्यंताभाव कहते हैं जैसे घटोत्पत्तिसे पहिले घटका प्रागभाव है घटविनाशसे पीछे घटका प्रध्वंसाभाव है घटकापटमें अन्योऽन्याभाव है और घटकाजीवमें अत्यंताभाव है।

न सत्की और न पर्यायकी, किन्तु इसके सिवाय यह दोष और आवेगा कि, जो नित्य है वह नित्यही रहेगा और जो अनित्य है वह अनित्यही रहेगा क्योंकि, एकके परस्पर विरुद्ध अनेक धर्म नहीं होसकते और ऐसी अवस्था में द्रव्यान्तरकी तरह द्रव्यगुणपर्याय में एकत्व कल्पनाके अभावका प्रसङ्ग आवेगा. यदि कोई कहै कि, समुद्रकी तरह द्रव्य और गुण नित्य हैं और पर्याय, कल्लोलोंकी तरह उपजती विनसती हैं सोभी ठीक नहीं है. क्योंकि, यह दृष्टान्त प्रकृतका बाधक और उसके विपक्षका साधक है। कारण, इस दृष्टान्तकी उक्तिसे समुद्र कोई भिन्न पदार्थ है जो नित्य है और कल्लोल कोई भिन्न पदार्थ है जो उपजता है और विनसता है ऐसा प्रतीत होता है किन्तु वास्तवमें पदार्थका स्वरूप ऐसा है कि, कल्लोलमालाओंके समूहकाही नाम समुद्र है जो समुद्र है सोही कल्लोलमाला है. स्वयंसमुद्रही कल्लोलस्वरूप परिणमै है इसही प्रकार जो द्रव्य है सोही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वरूप है स्वयं द्रव्य (सत्) उत्पादस्वरूप व्ययस्वरूप और ध्रौव्यस्वरूप परिणमै है। सत् (द्रव्य) से अतिरिक्त उत्पादव्यय ध्रौव्य कुछभी नहीं हैं भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण, और पर्याय कुछभी नहीं हैं। केवल मात्र सत् (द्रव्य) है और भेदकल्पनासापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वही सत्, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीन स्वरूप हो जाता है और जो इस भेद विवक्षाको छोड देते तो फिर वही सन्मात्रवस्तु रह जाती है. अब यदि यहां कोई शङ्का करै कि, उत्पाद और व्यय ये दोनों अंश होसकते हैं परन्तु ध्रौव्य तो त्रिकालविषयक है इसकारण वह किसप्रकार अंश कहा जावे सो यह शङ्का उचित नहीं है ऐसा नहीं है कि, सत् एक पदार्थ है और उत्पाद व्यय ध्रौव्य उसके तीन अंश

हैं। जैसे वृक्ष एक पदार्थ है और फलपुष्पादि उसके अंश हैं इसप्रकार उत्पादादिक सत्के अंश नहीं हैं, किन्तु स्वयं सत् ही प्रत्येक अंशस्वरूप है। यदि सत् (द्रव्य) उत्पादलक्ष्य है अथवा उत्पादस्वरूप परिणमै है तो वस्तु केवल उत्पाद मात्र है, यदि वस्तु व्ययलक्ष्य है अथवा व्ययनियत है तो वस्तु केवल व्ययमात्र है, यदि वस्तु ध्रौव्यलक्ष्य है अथवा ध्रौव्यस्वरूप परिणत है तो वस्तु ध्रौव्य मात्र है। जैसे मृत्तिका। यदि सत्स्वरूपघटलक्ष्य है तो मृत्तिका केवल घटमात्रही है, यदि असत् स्वरूप पिण्डलक्ष्य है तो मृत्तिका केवल पिण्डमात्र है और यदि मृत्तिका केवल मृत्तिकापनेकर लक्ष्य है तो मृत्तिका केवल मृत्तिकात्व मात्र है। इसप्रकार सत्के उत्पादादिक तीन अंश हैं। ऐसा नहीं है कि, वृक्षमें फलपुष्पकी तरह किसी एक भागस्वरूप अंशसे सत्का उत्पाद है तथा किसी एक एक भागस्वरूप अंशसे व्यय और ध्रौव्य है। अब यहां फिर कोई शंका करे कि, ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य अंशोंके हैं कि अंशीके, अथवा सत्के अंशमात्र हैं अथवा असत् अंश भिन्न हैं। इसका समाधान इसप्रकार है कि, यदि इनपक्षोंको सर्वथा एकान्तस्वरूप मानाजाय तो सब विरुद्ध हैं और इनहीको जो अनेकान्तपूर्वक किसी अपेक्षा विशेषसे माना जाय तो सब अविरुद्ध हैं। केवल अंशोंका अथवा केवल अंशीका न उत्पाद है न व्यय है और न ध्रौव्य है। किन्तु अंशीका अंश करके उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है। अब यहां फिर कोई शंका करता है कि, एकही पदार्थके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीन धर्म कहते हो सो प्रत्यक्षविरुद्ध है। इसमें कोई युक्ति भी है अथवा वचनमात्रसे ही सिद्ध है। उसका समाधान इसप्रकार है कि, यदि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंमें क्षणभेद होता अथवा स्वयं सतही उपजता और स्वयं सतही विनसता, तो यह विरोध आता

प्रयत्नचारीको कल्याण, स्थिर अप्रयत्नचारीको तीन उपवास, अस्थिर प्रयत्नचारीको कल्याण और अस्थिर अप्रयत्नचारीको दो उपवास प्रायश्चित्त देना चाहिए ॥ ८ ॥

मासो लघुर्मूलं मूलच्छेदोऽसकृत्पुनः ।
सास्त्रयः षष्ठं लघुमासोऽथ मासिकं ॥ ९ ॥

—हीं उपर्युक्त आठ पुरुषोंके वारवार असंज्ञी जीवके दो उपवास, लघुमास, मासिक, मूलच्छेद, उपवास, लघुमास और मासिक है । भावार्थ— धारी प्रयत्नचारी स्थिरको वारवार असंज्ञीजीवके मारने का प्रायश्चित्त दो उपवास, अप्रयत्नचारी स्थिरको कल्याण, प्रयत्नचारी अस्थिरको पंचकल्याण, अप्रयत्नचारी अस्थिरको मूलच्छेद देना चाहिए । तथा उत्तरगुणधारी प्रयत्नचारी स्थिर- उपवास, अप्रयत्नचारी स्थिरको षष्ठ—दो उपवास, अस्थिरको कल्याण, और अप्रयत्नचारी अस्थिरको —पंचकल्याण प्रायश्चित्त देना चाहिए ॥ ९ ॥

एतत्सान्तरमाम्नातं संज्ञिनि स्यान्निरंतरं ।
तीव्रमंदादिकात् भावानवगम्य प्रयोजयेत् ॥१०॥

अर्थ—यह ऊपर कहा हुआ प्रायश्चित्त एकवार और वारवार असंज्ञीजीवको मारनेवाले साधुके लिए सांतर माना गया है । व्याधि आदि कारणोंका समागम मिल जाने पर जो आचार्यको

निरपेक्ष केवल उत्पादको मानोगे तो असत्के उत्पादका प्रसंग आवेगा और विनाकारणके असत्का उत्पाद असंभव है। इसही प्रकार ध्रौव्यभी उत्पाद और व्ययके विना नहीं होसकता क्योंकि, उत्पादव्ययनिरपेक्ष केवल ध्रौव्यको माननेसे द्रव्य अपरिणामी ठहरेगा सो प्रत्यक्षविरुद्ध है क्योंकि, प्रत्यक्षसे द्रव्य परिणामी प्रतीत होता है। अथवा उत्पादव्यय विशेप हैं और ध्रौव्य सामान्य है वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेपात्मक है इसकारण उत्पादव्ययरूप विशेपके अभावमें ध्रौव्यरूप सामान्यकेभी अभावका प्रसंग आवेगा। तथा ध्रौव्यनिरपेक्ष उत्पादव्ययभी नहीं होसकते क्योंकि, सर्वक्षणिककी तरह सत्के अभावमें न व्यय होसकता है और न उत्पाद होसकता है। इसप्रकार उत्पादव्ययध्रौव्यका संक्षेप कथन समाप्त हुआ।

अव यहां फिर कोई शंका करता है कि, पहले वस्तुका स्वरूप निर्विकल्प कहा था सो उस निर्विकल्प एक पदार्थमें इतने विस्तारका क्या कारण है? उसका समाधान पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है, जिसप्रकार आकाशमें विष्कंभ (चौड़ाई) के क्रमसे अंगुल, वितस्ति (विलस्त), हस्तादिक अंशविभाग होता है उसही प्रकार अखण्ड देशरूप वड़े द्रव्यमें अंशविभाग होता है। वे अंश प्रथमअंश द्वितीयअंश इत्यादि क्रमसे अविभागी असंख्यात तथा अनन्त अंश हैं इन अंशोंमेंसे प्रत्येक अंशको द्रव्यपर्याय कहते हैं सो ठीकही है क्योंकि, द्रव्यमें अंशकल्पनाकोही पर्याय कहते हैं। (शंका) इस अंशकल्पना करनेका प्रयोजन क्या है? और जो यह अंशकल्पना नहीं कीजाय तो क्या हानि है? (समाधान) गुणोंका समुदायरूप जो पिण्ड है उसको देश कहते हैं, उस देशके न माननेसे द्रव्यका अस्तित्वही नहीं ठहरता, इसकारण देशका मानना आवश्यक है,

उस देशमें जो अंशकल्पना नहीं मानोगे तो द्रव्यमें छोटापन, बड़ापन, कायपन (अनेक प्रदेशीपन), और अकायपन (एकप्रदेशीपन) की सिद्धि नहीं होसकी। (शंका) जो ऐसा है तो एक द्रव्यमें अनेक अंशकल्पना न करके प्रत्येक अंशकोही परमाणुकी तरह द्रव्य क्यो नहीं मानलेते? क्योंकि, उस अंशमेंभी द्रव्यका लक्षण मौजूद है। (समाधान) सो ठीक नहीं है क्योंकि, खंडस्वरूप एक देशवस्तुमें और अखंडस्वरूप अनेक देशवस्तुमें प्रत्यक्षमें पारिणामिक बड़ाभारी भेद है क्योंकि. जो वस्तु खण्डरूप एक देश माना जायगा तो उस-वस्तुमें गुणका परिणमन एकही देशमें होगा, परन्तु यह बात प्रत्यक्ष बाधित है बेंतके एक भागको हिलानेसे सब बेंत हिलता है, अथवा शरीरके एक देशमें स्पर्श होनेसे उसका बोध सर्वत्र होता है, इसलिये खण्डैकदेशरूपवस्तु नहीं है किन्तु अखण्डितानेकदेशरूप है। तथापि पुद्गलपरमाणु और कालाणु ये खण्डैकदेशरूपवस्तुभी हैं, येही प्रदेश, विशेष (गुण) करसहित द्रव्यसंज्ञक हैं और उन विशेषोंको गुण कहते हैं। देश उन गुणोंका आत्मा (जीवभूत) है, उन गुणोंकी सत्ता देशसे भिन्न नहीं है और न देश और विशेषमें आधेय आधार सम्बन्ध है किन्तु उन विशेषोंमेंही देश वैसा है। जैसे तन्तु शुक्लादिक गुणोंका शरीर है तन्तुमें और शुक्लादि गुणोंमें आधार आधेय सम्बन्ध नहीं है किन्तु शुक्लादिक गुणोंमेंही तन्तु वैसा (तन्तु) है। (शंका) जिसप्रकार पुरुष भिन्न है और दण्डभिन्न है दण्ड और पुरुषके योगसे पुरुषको दण्डी कहते हैं, उसही प्रकार देश भिन्न है गुण भिन्न है उस देशको गुणके संयोगसे द्रव्य कहैं तो क्या हानि है? (समाधान) सो ठीक नहीं है क्योंकि, ऐसा माननेसे सर्वसंकर दोष आता है चेतनागुणका अचेतन पदार्थोंसे संयोगका प्रसंग आवेगा। (इसका

विशेष कथन पहले कर आये हैं वहांसे जानना) इसप्रकार इन निर्विशेष देशविशेषोंको गुण कहते हैं गुण, शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म, रूप, स्वभाव, प्रकृति, शील, और आकृति ये सब शब्द एक अर्थके कहनेवाले हैं। देशकी जो एकशक्ति है सोही अन्यशक्ति नहीं है किन्तु एकशक्तिकी तरह एक देशकी अनन्तशक्तियां हैं। जैसे एक आमके फलमें एकसमयमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण ये चार गुण दिखते हैं ये चारोंही गुण एक नहीं है किन्तु भिन्न २ हैं क्योंकि, जुदी २ इन्द्रियोंके विषय हैं। उसही प्रकार एक जीवमें दर्शन, ज्ञान, सुख, और चारित्र ये चारों गुण एक नहीं हैं किन्तु भिन्न २ हैं, इसही प्रकार प्रत्येक पदार्थमें अनन्त शक्तियाँ हैं। इन अनन्तगुणोंमेंसे प्रत्येकगुणमें अनन्त अनन्त गुणांश हैं, इसही गुणांशको अविभागपरिच्छेद कहते हैं इसका खुलासा इसप्रकार है कि, द्रव्यमें एकगुणकी एक समयमें जो अवस्था होती है उसको एक गुणांश कहते हैं, इसहीका नाम गुणपर्याय है। जिसप्रकार देशमें विष्कम्भक्रमसे अंशकल्पना है उसप्रकार गुणमें गुणांशकल्पना नहीं है, देशका देशांश केवल एक प्रदेश व्यापी है किन्तु गुणका एक गुणांश एक समयमें उस द्रव्यके समस्त देशको व्यापकर रहता है इसलिये गुणमें अंशकल्पना कालक्रमसे है। प्रत्येक समयमें जो अवस्था किसी गुणकी है उसही अवस्थाको गुणांश अथवा गुणपर्याय कहते हैं त्रिकालवर्ती इस सब गुणांशोंको एक आलाप करके गुण कहते हैं। एक गुणकी सदाकाल एकसी अवस्था नहीं रहती है, उसमें प्रायः हीना धिकता होती रहती है, यद्यपि एक गुणमें प्रायः प्रतिसमय हीनाधिकता होती रहती है तथापि उसकी मर्यादा है। किसीगुणकी सबसे हीनअवस्थाको जघन्य अवस्था कहते हैं और सबसे अधिक अवस्थाको उत्कृष्ट अवस्था कहते हैं। ऐसा नहीं है

कि, हानि होते होते कभी उसका अभाव हो जायगा अथवा वृद्धि होते २ हमेशा बढ़ताही चला जायगा, जब कि एकगुणकी अनेक अवस्था हैं और ये सब समान नहीं हैं किन्तु हीनाधिकरूप हैं, तो एक अधिक अवस्थामेंसे हीनावस्था घटानेसे उन दोनों अवस्थाओंका अन्तर निकलता है और इसप्रकार एकगुणकी अनेक अवस्थाओं-मेंसे दो २ अवस्थाओंका अनेक अन्तर निकलेंगे और वे सब अन्तरभी परस्पर समान नहीं हैं किंतु हीनाधिक हैं. इन अनेक अन्तरोंमें जो अन्तर सबसे हीन है उसको जघन्य अन्तर कहते हैं, किसीगुणकी जघन्य अवस्था और उसका जघन्य अन्तर समान होते हैं, उसगुणकी जघन्य अवस्था तथा जघन्य अन्तर इन दोनोंको अविभागपरिच्छेद कहते हैं, परन्तु किसीगुणमें उस गुणका जघन्य अन्तर उसगुणकी जघन्य अवस्थाके अनन्तवें भाग होता है, उस गुणमें उस जघन्य अन्तरकोही अविभागपरिच्छेद कहते हैं। ऐसी अवस्थामें उसगुणकी जघन्य अवस्थामें अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे जाते हैं जैसे कि, सूक्ष्मनिगोदियालब्ध्यपर्याप्तकजीवके जघन्यज्ञानमें अनन्तानन्त अवि-भागपरिच्छेद हैं, इन अविभागपरिच्छेदोंका आत्मा (जीवभूत) गुण है और गुणसे भिन्न इनकी सत्ता नहीं है, यहां इतना औरभी विशेष जानना कि एक समयमें एक गुणकी जो अवस्था है उसको गुणांश अर्थात् गुणपर्याय कहते हैं, परन्तु इस एक गुणपर्यायमेंभी अनन्त-गुणांश हैं, सो इन गुणांशोंको अविभागपरिच्छेद कहते हैं तथा गुण-पर्यायभी कहते हैं। द्रव्यमें अनन्तगुण हैं, उनके दो विभाग हैं एक सामान्य दूसरा विशेष। द्रव्यके सामान्य गुणोंमें छह गुण मुख्य हैं १ अस्तित्व २ द्रव्यत्व ३ वस्तुत्व ४ अगुरुलघुत्व ५ प्रमेयत्व ६ प्रदे-शवत्व। जिसशक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी भी अभाव नहीं होता

भिन्न २ हैं इन चारोंके मिलनेसे, समूहको द्रव्य कहते हैं, किन्तु अनन्तशक्तियोंके अभिन्नभावको देश कहते हैं, देशांश और गुणांश इनही देश और गुणोंकी अवस्था विशेष हैं। अनन्तशक्तियोंमेंसे प्रत्येक शक्ति, देशके समस्त भागमें व्यापक है। इसलिये इसका खुलासा भावार्थ यह है कि, अभिन्नभावकोलिये अनन्तशक्तियोंकी त्रिकालवर्ती अवस्थाओंके समूहको द्रव्य कहते हैं इससे "गुणसमुदायो द्रव्यं" ऐसा जो पूर्वाचार्योंने लक्षण किया है वह सिद्ध होता है। इसप्रकार गुण और गुणीमें अभिन्नभाव है इसका निर्देश "द्रव्येगुणाःसन्ति" अर्थात् द्रव्यमें गुण हैं इसप्रकार आधेयआधार सम्बन्धरूपभी होता है तथा "गुणवद्द्रव्यं" अर्थात् द्रव्यगुणवाला है इसप्रकार स्वस्वामिसम्बन्धरूपभी होता है। लौकिकमें आधेयआधार और स्वस्वामिसम्बन्ध भिन्न पदार्थोंमेंभी होते हैं और अभिन्न पदार्थोंमेंभी होते हैं। जैसे दीवारमें चित्र, तथा घड़ेमें दही, यहां भिन्नपदार्थोंका आधेयआधारसम्बन्ध है। तथा धनवान् पुरुष यहां भिन्नपदार्थोंमें स्वस्वामिसम्बन्ध है, इसही प्रकार वृक्षमें शाखा आदि हैं यहां अभिन्नपदार्थोंमें आधेयआधारसम्बन्ध है तथा वृक्षशाखावान् है यहां अभिन्नपदार्थोंमें स्वस्वामिसम्बन्ध है, सो द्रव्य और गुणके विषयमें अभिन्न आधेयआधार तथा अभिन्नही स्वस्वामिसम्बन्ध समझना। (शंका) जब गुणोंका समुदाय है सोही द्रव्य है गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है, तो यह द्रव्यकी जो कल्पना है सो व्यर्थही है। (समाधान) ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि, यद्यपि पट, तन्तुओंकाही समूह है, तन्तुओंसे भिन्न पट कोई पदार्थ नहीं है परन्तु जो शीतनिवारणादि अर्थक्रिया (प्रयोजनभूतकार्य) पटसे होसक्ती है सो तन्तुओंसे कदापि नहीं होसक्ती। इसलिये समुदायसमुदायी कथंचित् भिन्न हैं कथंचित् अभिन्न हैं।

अब " गुणपर्ययवद्द्रव्यं " और " सद्द्रव्यलक्षणं " इन दोनों लक्षणोंमें एकता दिखाते हैं,-सत् एक गुण है, उस सत्के उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य ये तीन अंश हैं, जिसप्रकार वस्तु स्वतःसिद्ध है उसहीप्रकार स्वतःपरिणामीभी है। भेदविकल्पनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जो सत् है सोही द्रव्य है, इसकारण द्रव्यही उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है और उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप द्रव्य, परिणामकेविना होनहीं सक्ता, यदि विनापरिणामकेभी उत्पादव्यय मानोगे तो असत्के उत्पाद और सत्के विनाशका प्रसंग आवेगा। इसकारण द्रव्य किसी भावसे उत्पन्न होता है, किसी भावसे विनाशको प्राप्त होता है, ये उत्पादव्यय वस्तुपनेमें नहीं होते, जैसे मृत्तिका घटस्वरूपसे उत्पन्न होती है। पिण्डस्वरूपसे विनाशको प्राप्त होती है, मृत्तिकास्वरूपसे उत्पादव्यय नहीं हैं। यदि द्रव्यमें उत्पादव्ययरूप परिणाम नहीं मानोगे तो परलोक तथा कार्यकारणभावके अभावका प्रसंग आवेगा और यदि परिणामीको नहीं मानोगे तो वस्तु परिणाममात्र क्षणिक ठहरेगी, तो प्रत्यभिज्ञान (यह वही है जो पहले था) के अभावका प्रसंग आवेगा, इससे सिद्ध हुआ कि, द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक है, नित्यताकी और गुणकी परस्पर व्याप्ति है इसलिये " द्रव्यगुणवान् है " ऐसा कहनेसे " द्रव्य ध्रौव्यवान् है " ऐसा सिद्ध होता है इसहीप्रकार अनित्यतायुक्तपर्यायोंकी उत्पादव्ययके साथ व्याप्ति है इसलिये " द्रव्यपर्यायवान् है " ऐसा कहनेसे " द्रव्य उत्पादव्ययुक्त है " ऐसा सिद्ध होता है। उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य इन तीनोंको एक आलापसे सत् कहते हैं इसलिये " गुणपर्ययवद्द्रव्यं " कहनेसे " सद्द्रव्यलक्षणं " ऐसा सिद्ध हुआ। (शंका) यदि ऐसा है तो तीन लक्षण कहनेका क्या प्रयोजन? तीनोंमेंसे कोई एक लक्षण कहना बस था। (समाधान)

यद्यपि इन तीनों लक्षणोंमें परस्पर विरोध नहीं है और परस्पर एक दूसरेके अभिव्यंजक हैं, तथापि ये तीनों लक्षण द्रव्यकी भिन्न तीन शक्तियोंकी अपेक्षासे कहे हैं अर्थात् पहले द्रव्यके छह सामान्यगुण कह आए हैं, उनमें एक द्रव्यत्व, दूसरा सत्व, और तीसरा अगुरुलघुत्व है (इन तीनोंके लक्षण भूमिकासे जानने) सो पहला लक्षण द्रव्यत्वगुणकी मुख्यतासे, दूसरा लक्षण सत्वगुणकी मुख्यतासे, और तीसरा लक्षण अगुरुलघुत्वगुणकी मुख्यतासे कहा है अब आगे गुणका स्वरूप वर्णन करते हैं।

गुणका लक्षण पूर्वाचार्योंने इसप्रकार किया है कि, द्रव्यके आश्रय विशेषमात्र निर्विशेषको गुण कहते हैं। भावार्थ—एक गुण जितने क्षेत्रको व्यापकर रहता है उतनेही क्षेत्रमें समस्तगुण रहते हैं, अर्थात् अनन्तगुण एकही देशमें भिन्न २ लक्षणयुक्त अभिन्न भावसे रहते हैं। इनगुणोंके अभिन्नभावकोही द्रव्य कहते हैं। वही द्रव्य इन गुणोंका आश्रय है। जैसे अनेक तन्तुओंके समूहकोही पट कहते हैं। इस पटकेही आश्रय अनेक तंतु हैं परन्तु प्रत्येक तंतुका जैसे देश भिन्न २ है उसप्रकार प्रत्येक गुणका देश भिन्न २ नहीं हैं किन्तु सबका देश एकही है। जैसे किसी वैद्यने एक एक तोले प्रमाण एक लक्ष ओषधि लेकर एक चूर्ण बनाया और उसकी कूट छान नींबूके रसमें घोंटकर एक एक रत्तीप्रमाण गोलियां बनाई अब उस एक गोलीमें एक लक्ष औषधियां हैं और उन सबका देश एकही है इसही प्रकार समस्त गुणोंका एक देश जानना। परंतु दृष्टान्तका दार्ष्टान्तसे एक देशही मिलता है। जिसधर्मकी अपेक्षासे दृष्टान्त दिया है उसही अपेक्षासे समानता समझना अन्यधर्मोंकी अपेक्षा समानता नहीं समझना। गुणके नित्यानित्य विचारमें अनेक वादी प्रतिवादी नाना

कल्पनाद्वारा परस्पर विवाद करते हैं, परन्तु जैनसिद्धान्तके अनुसार द्रव्यकी तरह गुणभी कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य हैं। जैसे पहले समयमें परिणामी ज्ञान घटाकार था और पिछले समयमें वही ज्ञान पटाकार हुआ परंतु ज्ञानपनेका नाश नहीं हुआ। घटाकार परिणतिमेंभी ज्ञान था और पटाकार परिणतिमेंभी ज्ञान है इसलिये ज्ञानगुण कथंचित् ज्ञानपनेकर नित्य है। अथवा जैसे आमके फलमें वर्णगुण पहले हरा था पीछे पीला हुआ, परन्तु वर्णपनेका नाश नहीं हुआ है इसलिये वर्णगुणकथंचित् वर्णपनेकी अपेक्षासे नित्य है। जिसप्रकार वस्तु परिणामी है उसही प्रकार गुणभी परिणामी है इसलिये जैसे वस्तुमें उत्पाद व्यय हैं उसी प्रकार गुणमेंभी उत्पादव्यय होते हैं। जैसे ज्ञान यद्यपि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षासे नित्य है, किंतु प्रथमसमयमें घटको जानते हुए घटाकार था और दूसरे समय पटको जानते हुए पटाकार होता है, इसलिये ज्ञानमें पटाकारकी अपेक्षा उत्पाद हुआ और घटाकारकी अपेक्षा व्यय हुआ। अथवा जैसे आमके फलमें वर्णकी अपेक्षा यद्यपि नित्यता है परंतु हरितता और पीतताकी अपेक्षा उत्पाद और व्यय होते हैं। अब यहां शंकाकार कहता है कि, गुणतो नित्य हैं और पर्याय अनित्य हैं फिर द्रव्यकी तरह गुणोंको नित्यानित्यात्मक कैसे कहा? (समाधान) इसका अभिप्राय ऐसा है कि, जब गुणोंसे भिन्न द्रव्य अथवा पर्याय कोई पदार्थ नहीं हैं, किंतु गुणोंके समूहको ही द्रव्य कहते हैं, तो जैसे द्रव्य नित्यानित्यात्मक है उसी प्रकार गुणभी नित्यानित्यात्मक स्वयंसिद्ध हैं, वे गुण यद्यपि नित्य हैं, तथापि विनायत्नके प्रतिसमय परिणमते हैं और वह परिणाम उन गुणोंकीही अवस्था है, उन परिणामों (पर्यायों) की गुणोंसे भिन्नसत्ता नहीं है। (शंका) पूर्व और उत्तर समयमें गुण

अनेक गुण साथ रहते हैं। कभी भी उनका परस्पर वियोग नहीं होता; किंतु पर्याय क्रमभावी हैं इसलिये उनका सदा साथ नहीं रहता। जे पर्याय पूर्वसमयमें हैं वे उत्तरसमयमें नहीं हैं। किंतु गुण जितने पूर्वसमयमें साथ थे वे सबही उत्तरसमयमें हैं। इसलिये गुणोंका साथ कभी नहीं छूटता। यह बात पर्यायोंमें नहीं है। इसलिये गुण सहभावी हैं और पर्याय क्रमभावी हैं। जो अनर्गल प्रवाहरूपवर्ते उसको अन्वय कहते हैं। सत्ता, सत्व, सत्, सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ और विधि ये सब शब्द एकार्थवाचक हैं। वह अन्वय जिनका होय उनको अन्वयी अथवा गुण कहते हैं। भावार्थ:—एक गुणका उसही गुणकी अनंत अवस्थाओंमें अन्वय (सन्तति अथवा अनुवृत्ति) पाया जाता है। इसकारण गुणको अन्वयी कहते हैं। यद्यपि एक द्रव्यमें अनेक गुण हैं। इसलिये नानागुणकी अपेक्षा गुण व्यतिरेकीभी है। परंतु एक गुण अपनी अनंत अवस्थाओंकी अपेक्षासे अन्वयीही है। यह वही है, इस ज्ञानके हेतुको अन्वय कहते हैं; और यह वह नहीं है, इस ज्ञानके हेतुको व्यतिरेक कहते हैं। वह व्यतिरेक देश, क्षेत्र, काल और भावके निमित्तसे चार प्रकारका है। अनंतगुणोंके एक समयवर्ती अभिन्न पिंडको देश कहते हैं। जो एक देश है सो दूसरा नहीं है; तथा जो दूसरा देश है सो दूसराही है, पहला नहीं है; इसको देशव्यतिरेक कहते हैं। जितने क्षेत्रको व्यापकर एक देश रहता है वह क्षेत्र वही है, दूसरा नहीं है; और दूसरा है सो दूसराही है वह नहीं है। इसको क्षेत्रव्यतिरेक कहते हैं। एक समयमें जो अवस्था होती है सो वह अवस्था वही है दूसरी नहीं है और द्वितीय समयवर्ती अवस्था दूसरीही है वह नहीं है; इसको कालव्यतिरेक कहते हैं। जो एक गुणांश है वह वही है दूसरा नहीं है और जो

दूसरा है सो दूसराही है वह नहीं है; इसको भावव्यतिरेक कहते हैं। यह इस प्रकारका व्यतिरेकपर्यायोंमेंही होता है। गुण यद्यपि अनेक हैं तथापि इस प्रकारके व्यतिरेक गुणोंमें नहीं हैं। किसीने जीवको "ज्ञान है सो जीव है" इस प्रकार ज्ञानगुणकी मुख्यतासे ग्रहण किया; और दूसरेने "दर्शन है सो जीव है" इस प्रकार दर्शनगुणकी मुख्यतासे जीवको ग्रहण किया; किंतु दोनोंने उसही जीवको उलटाही ग्रहण किया। इसलिये जैसे अनेक पर्याय "सो यह नहीं है" इस लक्षणके सद्भावसे व्यतिरेकी हैं उस प्रकार गुण अनेक होनेपरभी "सो यह नहीं है" इस लक्षणके अभावसे व्यतिरेकी नहीं है। उनगुणोंके दो भेद हैं सामान्य और विशेष; जो गुण दूसरे द्रव्योंमें पाये जाते हैं उनको सामान्यगुण कहते हैं, जैसे सत् इत्यादि और जो गुण दूसरे द्रव्योंमें नहीं पाये जाते उनको विशेषगुण कहते हैं, जैसे ज्ञानादिक। इस प्रकार गुणका कथन समाप्त हुआ अब आगे पर्यायका कथन करते हैं।

पर्याय व्यतिरेकी, क्रमवर्ती, अनित्य, उत्पादव्ययस्वरूप, तथा कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप होती है; सो व्यतिरेकीपनेका लक्षण तो गुणके कथनमें कर आये, अब शेषमेंसे पहलेही क्रमवर्तित्वका लक्षण कहते हैं। पहले एक पर्याय हुई उस पर्यायका नाश होकर दूसरी हुई, दूसरीका नाश होकर तीसरी हुई; इसही प्रकार जो क्रमसे होय उसको क्रमवर्ती कहते हैं। (शंका) तो फिर व्यतिरेक और क्रममें क्या भेद है? (समाधान) जैसे स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी पर्याय हैं और स्थूलपर्यायमें सूक्ष्मपर्याय अंतर्लीन हैं (गर्भित हैं); इन दोनोंमें यद्यपि पर्यायपनेकर समानता है तथापि स्थूलसूक्ष्म अपेक्षा भेद है। भावार्थः—द्रव्यका आकार प्रतिसमय परिणमनरूप होता है। प्रथम

समयवर्ती आकारकी अपेक्षासे द्वितीयादि समयवर्ती आकारोंमें कुछ अंश सदृश होता है और कुछ असदृश। यो असदृश सूक्ष्मभेद इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं होता; और सदृशस्थूल परिणाम इन्द्रियद्वारा ग्रहण होता है। वह अनेक समयोंमें एकसा है इसलिये स्थूलपर्याय चिरस्थायी कहा है और इसही अपेक्षासे पर्यायको कथंचित् ध्रौव्यस्वरूप कहा है। जिस-प्रकार सूक्ष्मस्थूल पर्यायमें लक्षणभेदसे भेद है उसही प्रकार व्यतिरेक और क्रममेंभी लक्षणभेदसे भेद है। स्थूलपर्यायमें अनेक समयोंमें सदृशांश (सदृश हैं अंश जिसके) सत (द्रव्य) का जो प्रवाह-रूपसे अंशविभाग पृथक् है उसको व्यतिरेक कहते हैं। भावार्थः— स्थूलपर्यायमें जो आकार प्रथम समयमें है उसहीके सदृश आकार दूसरे समयमें है। इन दोनों आकारोंमें पहला है सो दूसरा नहीं है और दूसरा है सो पहला नहीं है। इसकोही व्यतिरेकीपन कहते हैं; और एकके पीछे दूसरा होना, इसको क्रम कहते हैं। यह वह है अथवा अन्य है इसकी यहां विवक्षा नहीं है। "एकके पीछे दूसरा होना" इस लक्षणरूपक्रम "यह वह नहीं है" इस लक्षणरूप व्यतिरेकका कारण है। इसलिये क्रम और व्यतिरेकमें कार्यकारण भेद है। (शंका) पहले कह आये हो कि, "जो पहले था सोही यह है अथवा जैसा पहले था वैसाही है" और अत्र क्रम और व्यतिरेकमें इससे विपरीत कहा इसमें क्या प्रमाण है? (समाधान) इसका अभिप्राय ऐसा है कि, जिसप्रकार द्रव्य स्वतः सिद्ध नित्य है उसही प्रकार परिणामीभी है। इसलिये प्रदीप शिखोंकी तरह प्रतिसमय पुनः २ परिणमै है। (शंका) तो यह परिणाम पूर्वपूर्व भावके विनाशसे अथवा उत्तर २ भावके उत्पादसे होता है? (समाधान) सो नहीं है नतो किसीका उत्पाद होता और न किसीका नाश होता जो पदार्थ असत् है

अर्थात् हैही नहीं वह आवेगा कहांसे और जो है वह जायगा कहां : इस कारण यह निश्चित सिद्धान्त है कि, असत्का उत्पाद और सत्का विनाश कदापि नहीं होता। द्रव्यको जो नित्यानित्यात्मक कहा है उसका खुलासा इसप्रकार है कि, जब " सत्का विनाश कभी नहीं होता " ऐसा सिद्धान्त निश्चित है तो समस्त द्रव्य नित्य हैंही। इससे नित्यपक्ष तो स्वयंसिद्ध है; अब द्रव्यको जो कथंचित् अनित्य कहा है उसका अभिप्राय यह हैं कि, द्रव्यमें अनित्यताका कथन दो प्रकारसे है, एक तो व्यंजनपर्यायकी अपेक्षासे और दूसरा अर्थ-पर्यायकी अपेक्षासे। द्रव्यकी व्यक्तिके विकारको व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे एक जीव पहले मनुष्य व्यक्तिरूप था वही जीव पीछे हस्ती व्यक्तिरूप हो गया। इसहीका नाम व्यंजनपर्याय है। इस अवस्थामें ऐसा कहनेका व्यवहार है कि, मनुष्यका नाश हुआ और हाथी उत्पन्न हुआ; परंतु जो परमार्थसे विचारा जाय तो नतो किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है। किंतु जैसे एक सोनेका पांसा है; उसको एक सुनारने ठोककर किंचित् लंबा करके और मोड़कर उसका एक कड़ा बना दिया। अब यहां जो परमार्थसे देखा जाय तो न तो किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है। किंतु जो सोना पहले पांसेके आकार था वही अब कड़ेके आकार हो गया अर्थात् पहले उस सोनेने आकाशके जो प्रदेश रोके थे वे प्रदेश अब नहीं रोके हैं, किन्तु दूसरेही प्रदेश रोके हैं। भावार्थः—सुवर्ण द्रव्यका देशसे देशान्तर मात्र हुआ है; न किसीका नाश हुआ है और न किसीकी उत्पत्ति हुई है। केवल आकारका भेद हुआ है; और आकारभेदमें देशसे देशांतरही है; उत्पत्ति विनाश कुछभी नहीं है। इसही प्रकार जीवभी मनुष्यके आकारसे हाथीका आकार हुआ है।

वस्तुका स्वरूप मान रक्खा है इस कारण सर्वत्र विरोधही विरोध दीखता है। यदि इन धर्मोंको कथंचित् रूपसे मानें तो कुछभी विरोध नहीं रहै; जैसे कि, छह जन्मांध पुरुषोंने हस्तीके भिन्न २ अंगोंको देखकर हस्तीका भिन्न २ स्वरूपसे निश्चय किया और अपने २ पक्ष सिद्ध करनेके लिये विवाद करने लगे। अर्थात् एक अंधेने हस्तीकी सूंड छुई थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप मूसलाकार निरूपण करता था, दूसरेने हस्तीका कान पकड़ा था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप सूपके आकार निरूपण करता था, तीसरेने हस्तीकी पूंछ पकड़ी थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप दण्डाकार निरूपण करता था, चौथेने हस्तीकी टांग पकड़ी थी इस कारण वह हस्तीका स्वरूप स्तम्भाकार निरूपण करता था, पांचवेंने पेट छुआ था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप विटौरेके आकार कहता था और छठेने दांत पकड़ा था इस कारण वह हस्तीका स्वरूप सोटेके आकार निरूपण करता था। इस प्रकार वे छहों जन्मान्ध; हस्तीके भिन्न २ अंगोंका स्पर्शकर भिन्न २ अंगस्वरूप हस्तीका निरूपण करके आपसमें झगड़ते थे। दैवयोगसे इतनेहीमें एक सूझता (आंख-सहित) मनुष्य आगया और उनको इस प्रकार झगड़ते हुए देखकर कहने लगा, भाइयो! "तुम व्यर्थ क्यों झगड़ा कर रहे हो, तुम सब सच्चे हो। तुमने हस्तीका एक एक अंग देखा है। इनही सब अंगोंका जो समुदाय है वही वास्तविक हस्ती है"। ठीक ऐसीही अवस्था संसारके मतोंकी है। अनेकान्तात्मक वस्तुके एक एक अंगकोही वस्तुका यथार्थ स्वरूप मानकर अनेक वादी प्रतिवादी परस्पर विवाद कर रहे हैं। यदि ये महाशय एकान्तआग्रहको छोड़कर अनेकान्तात्मक वस्तुका स्वरूप मानलें तो परस्पर कुछभी विवाद नहीं रहै।

अब उसही अनेकान्तका संक्षेप स्वरूप जीवतत्वपर घटित करके कहते हैं।

एक जीव, यद्यपि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे, एक है; तथापि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वही एकजीव अनेकात्मक (अनेक स्वरूप) है। इसकी अनेकात्मकतामें पूर्वाचार्योंने अनेक हेतुओंका उपन्यास किया है। उनमेंसे कुछ थोड़ेसे यहां लिखे जाते हैं।

(१) अभाव विलक्षण होनेसे जीव अनेकान्तात्मक है अर्थात् वस्तु भाव (सत्) स्वरूप है और अवस्तु अभाव (असत्) स्वरूप है। अभावस्वरूप अवस्तुके कुछभी भेद नहीं हो सक्ते; क्योंकि जो कोई पदार्थही नहीं है तो भेद किसके किये जांय ? जीवपदार्थ अभाव-स्वरूप अवस्तुसे विलक्षण भावस्वरूप है और भावस्वरूपवस्तुमें नानाप्रकार भेद होसक्ते हैं। यदि अभावस्वरूप अवस्तुकी तरह भाव-स्वरूप वस्तुमेंभी भेद नहीं होंगे तो दोनोंमें विशेषताके अभावका प्रसङ्ग आवेगा।

(२) वह भावस्वरूप जीव छह भेदरूप है। अर्थात् १ उत्पत्ति-स्वरूप, २ अस्ति (मौजूदगी) स्वरूप, ३ परिणामस्वरूप, ४ वृद्धि-स्वरूप, ५ अपक्षयस्वरूप और ६ विनाशस्वरूप। जिस समय जीव देवायुके नाश और मनुष्यायुके उदयसे देवपर्यायको छोड़कर मनुष्य-रूपसे उत्पन्न होता है उस समय उत्पत्तिस्वरूप है। मनुष्यायुके निरंतर उदयसे मनुष्यपर्यायमें यह जीव अवस्थान करता है इसलिये अस्तिस्वरूप है। बाल्यावस्थासे युवावस्थारूप तथा युवावस्थासे वृद्धावस्थारूप होता है; इसलिये परिणामस्वरूप है। मनुष्यपनेको न छोड़ता हुआ छोटेसे बड़ा होता है, इसलिये वृद्धिस्वरूप है। ढलती उमरमें क्रमसे जरावस्थाको धारण करता हुआ एक देशहीनताको

प्राप्त होता है; इसलिये अपक्षयस्वरूप है। मनुष्यपर्यायको छोड़कर पर्यायान्तरको प्राप्त होता है; इसलिये विनाशस्वरूप है। इसही प्रकार प्रतिसमय वृत्तिके भेदसे अनन्तस्वरूप होते हैं। इसलिये भावस्वरूप-जीवके अनेकान्तात्मकपना है।

(३) अथवा यह जीव अस्तित्व, ज्ञेयत्व, द्रव्यत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व आदि अनेक धर्मसंयुक्त है; इस कारण अनेकान्तात्मक है।

(४) अथवा जीव अनेक शब्द और अनेक विज्ञानोंका विषय है; इसलिये अनेकान्तात्मक है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, संसारमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द दीखते हैं, अर्थात् एक पदार्थमें अनेक धर्म हैं, सो जिस समय वह पदार्थ किसी एक धर्मरूप परिणमै है उस समय वह पदार्थ उस एक शब्दका वाच्य होता है। इसही प्रकार जब वह पदार्थ द्वितीयादि धर्मरूप परिणमै है, उस समय द्वितीयादि शब्दोंका वाच्य होता है। इस प्रकार एक पदार्थ अनेक शब्दोंका विषय है। जैसे कि एकही घट पदार्थ पार्थिव, मार्त्तिक, सैन्य, नव, महान इत्यादि अनेक शब्दोंका विषय है; इसीप्रकार एकही घट पदार्थ अनेक विज्ञानोंका विषय समझना। इस घटकीही तरह जीवभी देव, मनुष्य, पशु, कीट, बाल, युवा, वृद्ध इत्यादि अनेक शब्द और विज्ञानोंका विषय है; इसलिये अनेकान्तात्मक है।

(५) अथवा जैसे एक अग्निपदार्थमें दाहकत्व, पाचकत्व, प्रकाशकत्व आदि अनेक शक्ति हैं; उसही प्रकार एकही जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तसे अनेक विकाररूप परिणमनको कारणभूत अनेक शक्तियोंके योगसे अनेकान्तात्मक है।

(६) अथवा जैसे एक घट अनेक सम्बन्धोंके योगसे पूर्व, पर, अन्तरित, निकट, दूर, नवीन, पुराण, समर्थ, असमर्थ, देवदत्तकृत, धनदत्तस्वामिक, संख्यावान्, परिणामवान्, संयुक्त, विभक्त, पृथक् आदि अनेक नामधारक होता है; उसही प्रकार एकही जीव अनेक सम्बन्धोंके योगसे पिता, पुत्र, स्वामी, सेवक, मामा, भानजा, सुसर, जमाई, साला, बहनेऊ, देशी, विलायती आदि अनेक नामधारक होता है; इसलिये अनेकान्तात्मक है।

(७) अथवा जैसे देवदत्तके इन्द्रदत्तकी अपेक्षासे अन्यपना है उसही प्रकार जिनदत्तकी अपेक्षासेभी अन्यपना है। परन्तु जो अन्यपना इन्द्रदत्तकी अपेक्षासे है वही अन्यपना जिनदत्तकी अपेक्षासे नहीं है। यदि दोनोंकी अपेक्षासे एकही अन्यपना मानोगे तो इन्द्रदत्त और जिनदत्तमें एकताका प्रसंग आवेगा। किन्तु जिनदत्त और इन्द्रदत्त भिन्न २ हैं; इस कारण दोनोंकी अपेक्षासे अन्यपनाभी भिन्न २ है। इसही प्रकार संसारमें अनन्त पदार्थ हैं। सो एक जीवके उन अनन्त पदार्थोंकी अपेक्षासे अनन्त अन्यत्व हैं जो ऐसा नहीं मानोगे तो उन सब अनन्त पदार्थोंके एकताका प्रसंग आवेगा। किन्तु वे अनन्त पदार्थ एक नहीं हैं; भिन्न २ हैं। इस कारण एकजीवमें अनन्त पदार्थोंकी अपेक्षासे अनन्त अन्यत्व हैं; इसलिये अनेकान्तात्मक है।

(८) अथवा जैसे एक घट अनेक रंगोंके सम्बन्धसे लाल, काली, पीली आदि अनेक अवस्थाओंको धारण करता हुआ अनेक रूप होता है; उसही प्रकार एकजीव चारित्रमोहादिक कर्मके निमित्तसे, अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे तीव्र, मंदादि अनन्त अवस्था-

ओंको धारण करनेवाले क्रोधादिक अनेक भावरूप परिणमन होनेसे अनेकान्तात्मक है ।

(९) अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान, कालके अनन्त समय हैं । एकजीव प्रत्येक समयमें भिन्न २ अवस्थारूप परिणमै है; इसलिये अनन्तसमयोंमें अनन्तपरिणामरूप होनेसे अनेकान्तात्मक है ।

(१०) अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप होनेसे एकजीव अनेकान्तात्मक है । भावार्थः—यद्यपि एक पदार्थ एकही समयमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है; तो अनन्त समयोंमें एकही पदार्थके अनन्त उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वयंसिद्ध हैं; तथापि एकही पदार्थके एक समयमें एकही उत्पाद अनेक स्वरूप है। उसका खुलासा इस प्रकार है। जैसे एक घट एक समयमें पार्थिवपनेसे उत्पन्न होता है; जलपनेसे उत्पन्न नहीं होता है। निजाधारभूतक्षेत्रकपनेसे उत्पन्न होता है; अन्यक्षेत्रकपनेसे उत्पन्न नहीं होता है । वर्तमानकालपनेसे उत्पन्न होता है; नकि अतीतानागतकालपनेसे । बड़ेपनसे उत्पन्न होता है; नकि छोटेपनसे । जिससमय यह घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, कालभावसे उत्पन्न होता है उसही समयमें इसके सजातीय अन्य पार्थिव घट, अथवा ईषद्विजातीय (किंचित् विजातीय) सुवर्णादि घट, तथा अत्यन्त विजातीय पट आदि अनन्त मूर्त्तामूर्त्त द्रव्य, अपने २ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे उत्पन्न होते हैं। प्रकृत घटका उत्पाद, इन अनन्त पदार्थोंके अनन्त उत्पादोंसे भेदरूप होनेसे स्वयं अनन्त भेदरूप है। अन्यथा सब पदार्थोंमें अविशिष्टताका प्रसंग आवैगा तथा तीन लोकमें अनन्त पदार्थ हैं; वे अनन्त पदार्थ वर्तमानसमयको छोड़ अतीत और अनागतकालके अनन्त समयोंमें, अनन्त अवस्थास्वरूप हैं; उन अनन्त अवस्थारूप पदार्थोंके सम्बन्धसे; वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रकृत घटका

समस्त अनेक धर्मोंकी प्रतिपादकता संभव है, इसलिये जीवका निरूपण युगपत्पनेसे कहा जाता है । जब युगपत्पनेसे निरूपण होता है तब सकलादेश होता है, उसहीको प्रमाण कहते हैं, क्योंकि "सकलादेश प्रमाणके आधीन है" ऐसा वचन है । और जब क्रमसे निरूपण होता है, तब विकलादेश होता है उसहीको नय कहते हैं क्योंकि, "विकलादेश नयके आधीन है" ऐसा वचन है। (शंका) सकलादेश किसप्रकार है (समाधान) एक गुणकेद्वारा वस्तुके समस्त स्वरूपोंका संग्रह होनेसे सकलादेश है। भावार्थ–अनेक गुणोंका जो समुदाय है उसको द्रव्य कहते हैं, गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है इसलिये उसका निरूपण गुणवाचक शब्दकेविना नहीं हो सक्ता, अतः अस्तित्वादि अनेक गुणोंके समुदायरूप एक जीवका, निरंशरूप समस्तपनेसे, अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचार करि, एक गुणकेद्वारा प्रतिपादन होता है और विभागके कारण दूसरे प्रतियोगी गुणोंकी अपेक्षा नहीं है, इसलिये जिस समय एक गुणके द्वारा अभिन्नस्वरूप एक वस्तुका प्रतिपादन किया जाता है उससमय सकलादेश होता है । (शंका) अभेदवृत्ति अथवा अभेदोपचार किसप्रकार है (समाधान) द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वे सम्पूर्ण धर्म अभिन्न हैं इसलिये अभेदवृत्ति है, तथा यद्यपि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वे समस्त धर्म परस्पर भिन्नभी हैं तथापि एकताके अध्यारोपसे अभेदोपचार है । इसका खुलासा इस प्रकार है कि, पूर्वाचार्योंने तत्वाधिगमका हेतु दो प्रकार वर्णन किया है १ स्वाधिगमहेतु २ पराधिगमहेतु, स्वाधिगमहेतु ज्ञानस्वरूप है, उसकेभी दो भेद हैं १ प्रमाण २ नय, पराधिगमहेतु वचनस्वरूप है वह वचनस्वरूप वाक्य दो प्रकारका है १ प्रमाणात्मक २ नया-

त्मक जिस वाक्यसे एक गुणद्वारा अभिन्नरूप समस्त वस्तुका निरूपण किया जाता है उस वाक्यको प्रमाणवाक्य कहते हैं इसहीका नाम सकलादेश है, और जो वाक्य अभेदवृत्ति और अभेदोपचारका आश्रय न करके वस्तुके किसी एक धर्म विशेषका बोधजनक है, उस वाक्यको नयवाक्य कहते हैं, इसहीका नाम विकलादेश है। इन दोनोंमेंसे प्रत्येकके सात सात भेद हैं अर्थात् प्रमाणवाक्यके सात भेद हैं इसहीको प्रमाणसप्तभंगी कहते हैं। इसही प्रकार नयवाक्यकेभी सात भंग हैं और इसहीका नाम नयसप्तभंगी है। (सप्तभंग अर्थात् वाक्योंके समूहको सप्तभंगी कहते हैं). सप्तभंगीका लक्षण पूर्वाचार्योंने इस प्रकार किया है "प्रश्नवशादेकस्मिन्वस्तुन्यविरोधेनविधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभंगी". अर्थात् प्रश्नके वशसे किसी एक वस्तुमें अविरोध रूपसे विधि तथा प्रतिषेधकी कल्पनाको सप्तभंगी कहते हैं जैसे १ स्यादस्त्येवजीवः २ स्यान्नास्त्येवजीवः ३ स्यादवक्तव्यएवजीवः ४ स्यादस्तिनास्तिचजीवः ५ स्यादस्तिचावक्तव्यश्चजीवः ६ स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्चजीवः ७ स्यादस्तिनास्तिचावक्तव्यश्चजीवः अब पहलेही सकलादेशका कथन करते हैं.

सकलादेशमें प्रत्येक पदार्थके प्रति सात सात भंग जानने अर्थात् १ कथंचित् जीव हैही २ कथंचित् जीव नहींही है ३ कथंचित् जीव अवक्तव्यही है ४ कथंचित् जीव है और नहीं है ५ कथंचित् है और अवक्तव्य है ६ कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है ७. कथंचित् जीव है, नहीं है और अवक्तव्य है. इसही प्रकार समस्त पदार्थोंपर लगा लेना. इन सात भंगोंमेंसे पहले "स्यादस्त्येवजीवः" इस प्रथमभंगका अर्थ लिखते हैं.

प्रथमभंगमें चार पद हैं १ स्यात् २ अस्तिं, ३ एव, ४ जीवः इनमें जीव पद द्रव्यवाचक है और अस्तिपद गुणवाचक है अर्थात् "जीवः अस्ति" का अर्थ जीवद्रव्य अस्तित्व गुणवान् है, इनमें जीव विशेष्य है और अस्तित्व विशेषण है, अर्थात् जीव अस्तित्ववान् है ऐसा अर्थ हुआ। प्रत्येक वाक्य कुछ न कुछ अवधारण (नियम) अवश्य करता है। यदि नियम रहित वाक्य माना जाय तो वाक्यके प्रयोगको अनर्थकता आवेगी। उक्तंच "वाक्येऽवधारणं तावद-निष्टार्थनिवृत्तये। कर्तव्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित्॥" अर्थात् अनिष्टकी निवृत्तिकेवास्ते वाक्यमें अवधारण अवश्य करना चाहिये अन्यथा वाक्य, कदाचित् अनुक्तके समानही होगा, इसलिये जीवः अस्ति (जीव अस्तित्ववान है) इस वाक्यमेंभी अवधारण अवश्य होना चाहिये अर्थात् अवधारण (नियम) वाचक एव (ही) शब्दका प्रयोग जीव पदके साथ करना चाहिये। जीवः अस्ति ये दो पद हैं इनमेंसे, एव शब्दका प्रयोग जीव पदके साथ करना अथवा अस्ति पदके साथ, जो जीव पदके साथ एवका प्रयोग किया जायगा तो वाक्यका आकार इसप्रकार होगा "जीव एव अस्ति" अर्थात् जीवही अस्तित्ववान् है और ऐसी अवस्थामें जीवसे भिन्न पुद्गला-दिकके नास्तित्व (अस्तित्वके अभाव) का प्रसंग आया, इसलिये जीवके साथ एवकारका सम्बन्ध इष्ट नहीं है, इस कारण अस्तिपदके साथ एवका प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करनेसे वाक्यका आकार इस प्रकार होगा "जीवः अस्ति एव" अर्थात् जीव अस्तित्ववान्ही है, ऐसा होनेसे जीवमें केवल एक अस्तित्व धर्म (गुण) ही है अन्यधर्म नहीं हैं, ऐसा अनिष्ट अर्थ होने लगेगा, क्योंकि पहले जीवको अनेक धर्मात्मक (अनेकान्तात्मक) सिद्ध कर चुके हैं

भावसंबंधीपनेसे नहीं है और इस प्रकार स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, ये दो वाक्य सिद्ध हुए. यदि "स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे अस्तित्व है, परद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षासे नास्तित्व है" ऐसा नियम नहीं मानोगे तो घट घटही नहीं होसक्ता । क्योंकि ऐसा नियम न माननेसे उस घटका किसी नियमित द्रव्यक्षेत्रकालभावसे सम्बन्धही नहीं ठहरेगा और ऐसी अवस्थामें आकाशके पुष्पसमान अभावस्वरूपका प्रसंग आवेगा, अथवा जब घटका अनियमित द्रव्यक्षेत्रकालभावसे सम्बन्ध है तो सर्वथा भावस्वरूप होनेसे, वह सामान्य पदार्थ हुआ घट नहीं होसक्ता, जैसे महासामान्य अनियत द्रव्यादिसे संबंधित होनेके कारण सामान्य पदार्थ है उसही प्रकार घटभी सामान्यरूप ठहरेगा घट नहीं होसक्ता, उसका खुलासा इस प्रकार है कि, जैसे यह घट द्रव्यकी अपेक्षासे पृथ्वीपनेसे है उसही प्रकार जलादिकपनेसेभी होय तो यह घटही नहीं ठहरेगा । क्योंकि इस प्रकार द्रव्यके अनियमसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, जीव आदि अनेक द्रव्यस्वरूप होनेका प्रसंग आवेगा. तथा जैसे इस क्षेत्रस्थपनेसे है उसही प्रकार अनियत अन्यसमस्तक्षेत्रस्थपनेसेभी होय तो यह घटही नहीं ठहरेगा क्योंकि आकाशके समान सर्वत्र सद्भावका प्रसंग आवेगा । अथवा जैसे वर्तमानघटकालकी अपेक्षासे है उसही प्रकार अतीत पिंडादिकाल, अथवा अनागत-कपालादिकालकी अपेक्षासेभी हो तो वह घटही नहीं ठहरेगा, क्योंकि मृत्तिकाकी तरह सर्वकालसे संबंधका प्रसंग आवेगा, अथवा जैसे इस क्षेत्रकालके संबंधीपनेसे हमारे प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय है उसही प्रकार अतीत अनागतकाल तथा अन्यदेशसंबंधीपनेसेभी हमारे प्रत्यक्षके विषयपनेका प्रसंग आवेगा अथवा जैसे वर्तमानक्षेत्र-कालमें जलधारण कर रहा है उसही प्रकार अन्यक्षेत्रकालमेंभी

जलधारणका प्रसंग आवेगा। तथा जिसप्रकार नवीनपनेसे घट है उसही प्रकार पुराण तथा समस्तस्पर्शरसगन्धवर्णादिपनेसेभी हो तो वह घटही नहीं ठहरेगा क्योंकि ऐसा माननेसे घटके सर्व भावस्वरूप होनेका प्रसंग आवेगा, जैसे भाव स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, पृथु, महान्, ह्रस्व, पूर्ण, रिक्त आदि अनेक स्वरूप होता है, ऐसाही घट ठहरेगा परन्तु भाव, घट नहीं है इसलिये घटभी घट नहीं ठहरेगा.

इसही प्रकार जीवपरभी लगाना अर्थात् मनुष्यजीवके स्वद्रव्य-क्षेत्रकालभावकी अपेक्षासेही अस्तित्व है, परद्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तित्व नहीं है, यदि परद्रव्यादिकी अपेक्षासेभी मनुष्यका अस्तित्व हो, तो खरविषाणवत् मनुष्यका अभावही ठहरेगा, अथवा अनियत द्रव्यादिस्वरूपसे सामान्य पदार्थका प्रसंग आवेगा, जैसे महासामान्यका कोई नियत द्रव्यादि नहीं हैं उसही प्रकार मनुष्यकाभी नियत द्रव्यादि न होनेसे मनुष्य, सामान्य ठहरेगा. भावार्थ—जैसे मनुष्य, जीवद्रव्यपनेसे है उसही प्रकार यदि पुद्गलादिपनेसेभी हो तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै, क्योंकि ऐसा होनेसे पुद्गलादिमेंभी मनुष्यपनेका प्रसंग आवेगा. तथा जैसे इस क्षेत्रस्थपनेसें मनुष्य है उसही प्रकार यदि अन्यक्षेत्रस्थपनेसेभी होय तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै, क्योंकि ऐसा न होनेसे आकाशवत् सर्वगतपनेका प्रसंग आवेगा. तथा जैसे वर्तमानकालकी अपेक्षासे मनुष्य है उसही प्रकार यदि नरकादि अतीत और देवादि अनागतकालपनेसेभी होय तो वह मनुष्यही नहीं ठहरै, क्योंकि ऐसा होनेसे सदाकाल मनुष्यपनेका प्रसंग आवेगा, अथवा जैसे वर्तमानक्षेत्रकालकी अपेक्षासे हमारे प्रत्यक्ष है उसही प्रकार अन्यक्षेत्र तथा अतीत अनागतकालमेंभी हमारे प्रत्यक्षपनेका प्रसंग आवेगा, तथा जैसे यौवनपनेसे मनुष्य है उसही प्रकार

वालवृद्धादिपनेसे अथवा अन्यद्रव्यगतरूपरसादिपनेसेभी हो तो यह मनुष्यही नहीं ठहरै क्योंकि ऐसा होनेसे मनुष्यके सर्व भावस्वरूप होनेका प्रसंग आवेगा, इसलिये स्यादस्ति, स्यान्नास्ति ये दो वाक्य सिद्ध होते हैं। भावार्थ—जीवके स्वसत्ताका सद्भाव और परसत्ताका अभाव है इसलिये स्यादस्तिस्वरूप है स्यान्नास्तिस्वरूप है, क्योंकि स्वसत्ताका ग्रहण और परसत्ताका त्याग यही वस्तुका वस्तुत्व है यदि स्वसत्ताकाभी ग्रहण न होय तो वस्तुके अभावका प्रसंग आवेगा, तथा जो परसत्ताका त्याग न होय तो समस्त पदार्थ एकरूप हो जांयगे, अर्थात् जो जीव परसत्ताके अभावकी अपेक्षा न रक्खै तो जीव, जीव न ठहरेगा, क्योंकि सत्स्वरूप होते संते विशेपस्वरूपसे अनवस्थित है। भावार्थ—जैसे महासत्ता सत्स्वरूप होकर विशेपस्वरूपसे अनवस्थित होनेसे सामान्यपदवाच्यही होसक्ती है उसही प्रकार जीवभी परसत्ताके अभावकी अपेक्षा न रखनेपर सत्स्वरूप होकर विशेष स्वरूपसे अनवस्थित होनेसे सन्मात्रही ठहरेगा, जीव नहीं ठहरेगा. तथा जीवके परसत्ताके अभावकी अपेक्षा होते संतेभी यदि स्वसत्तापरिणतिकी अपेक्षा न करै तोभी उसके वस्तुत्व अथवा जीवत्व नहीं ठहरेगा, क्योंकि स्वसत्ताकाभी अभाव और परसत्ताकाभी अभाव होते संते आकाशपुष्पके समान शून्यताका प्रसंग आवेगा। इसलिये परसत्ताका अभावभी अस्तित्वस्वरूपके समान स्वसत्ताके सद्भावकी अपेक्षा रखता है अर्थात् जैसे अस्तित्वस्वरूप, अस्तित्वस्वरूपसे है, नास्तित्वस्वरूपसे नहीं है उसही प्रकार परसत्ताका अभावभी स्वसत्ताके सद्भावकी अपेक्षा रखता है, इसलिये जीव स्यादस्ति और स्यान्नास्तिस्वरूप है. यदि ऐसा नहीं मानोगे तो वस्तुके अभावका प्रसंग आवेगा। उसका खुलासा इस प्रकार है कि, अभाव समस्त

पदार्थोंसे निरपेक्ष, अत्यन्त शून्य पदार्थका प्रतिपादक और दूसरेके अन्वयके अवलंवनसे रहित है; तथा भाव अभावसे निरपेक्ष, समस्त सद्रूपवस्तुका प्रतिपादक और व्यतिरेकके अवलम्वनसे रहित है; इसलिये कोईभी वस्तु सर्वथा अभावस्वरूप नहीं होसक्ती, क्या कभी किसीने किसी वस्तुको सर्वथा भावस्वरूप अथवा अभावस्वरूप देखा है? कदापि नहीं! यदि वस्तु सर्वथा भावस्वरूप अथवा सर्वथा अभावस्वरूप होय तो वस्तु वस्तुही नहीं ठहरेगी क्योंकि सर्वथा अभावस्वरूप माननेसे आकाशके पुष्प समानशून्यताका प्रसंग आवेगा और जो सर्वथा भावस्वरूप वस्तुको माना जाय तो वस्तुका प्रतिपादन ही नहीं होसक्ता, क्योंकि जब सर्वथा भावस्वरूप है तो जैसे भावके सद्भावकी अपेक्षासे है उसही प्रकार अभावके सद्भावकी अपेक्षासेभी होनेपर भावापेक्षित वस्तुत्वकी तरह अभावापेक्षित अवस्तुत्वकाभी प्रसंग आया और ऐसी अवस्थामें वही वस्तु और वही अवस्तु होनेसे वस्तुका प्रतिपादन ही नहीं होसक्ता, क्योंकि अभाव भावसे विलक्षण है इसलिये क्रिया और गुणके व्यपदेशसे रहित है और भाव अभावसे विलक्षण है इसलिये क्रिया और गुणके व्यपदेशसहित है, और भाव और अभावकी परस्पर अपेक्षासे अभाव अपने सद्भाव और भावके अभावकी अपेक्षा रखता हुआ सिद्ध होता है और इसही प्रकार भावभी अपने सद्भाव और अभावके अभावकी अपेक्षा रखता हुआ सिद्ध होता है. यदि अभाव एकान्तसे है ऐसा मानोगे तो सर्वथा अस्तित्स्वरूप माननेसे अभावमें भाव अभाव दोनोंके सद्भावका प्रसंग आया और ऐसी अवस्थामें भाव और अभावका संकर होनेसे अस्थितस्वरूपपनेसे दोनोंके अभावका प्रसंग आया. और यदि अभाव एकान्तसे नहीं है ऐसा मानोगे तो जैसे अभावमें

भावका अभाव है उसही प्रकार अभावकेभी अभावका प्रसंग आवेगा और ऐसा होनेसे आकाशके पुष्पोंकाभी सद्भाव ठहरेगा. इसही प्रकार भाव एकान्तमेंभी लगाना, इसलिये भाव स्यात् है स्यात् नहीं है तथा अभावभी स्यात् है स्यात् नहीं है इसही प्रकार जीवभी स्यात् है स्यात् नहीं है ऐसा निश्चय करना योग्य है.

(शंका) विधि होते संतेही निषेधकी प्रवृत्ति होती है इस न्यायसे जब जीवमें पुद्गलादिककी सत्ता प्राप्तही नहीं है तो उसका निषेध करनेका क्या प्रयोजन? अर्थात् जब जीवोनास्ति इस पदका यह अर्थ है कि, जीवमें पुद्गलादिककी सत्ता नहीं है तो जब जीवमें पुद्गलादिककी सत्ताकी प्राप्तिही नहीं तो निषेध क्यों (समाधान) जीवभी पदार्थ है और पुद्गलादिकभी पदार्थ हैं इसलिये पदार्थ सामान्यकी अपेक्षासे जीवमें पुद्गलादिक समस्त पदार्थोंका प्रसंग संभवही है, परन्तु पदार्थ विशेषकी अपेक्षासे जीव पदार्थके अस्तित्वका स्वीकार और पुद्गलादिकके अस्तित्वके निषेधसेही जीव स्वरूपलाभको प्राप्त होसक्ता है अन्यथा यह जीवही नहीं ठहरेगा क्योंकि जब पुद्गलादिकके अस्तित्वका निषेध नहीं है तो जीवमें पुद्गलादिककाभी ज्ञान होने लगेगा और ऐसी अवस्थामें एकही पदार्थमें समस्त पदार्थोंका बोध होनेसे व्यवहारके लोपका प्रसंग आवेगा. सिवाय इसके जीवमें जो पुद्गलादिकका अभाव है सो जीवकाही धर्म है नकि पुद्गलादिकका, क्योंकि जैसे जीवका अस्तित्व जीवके आधीन होनेसे जीवका धर्म है उसही प्रकार पुद्गलादिकका अभावभी जीवके आधीन होनेसे जीवकाही धर्म है इसलिये जीवकी स्वपर्याय है, परन्तु पुद्गलादिकपरसे विशेष्यमाण है इसलिये उपचारसे परपर्याय है,

विचारसिद्ध हैं; भावार्थ—वर्णाश्रममतके माननेवाले उस उस वर्णाश्रमकी क्रियाओंका साधन जीवका अस्तित्व मानकर करते हैं उनको शंकाकार क्षणिक विज्ञानाद्वैतवादी कहता है कि, जब जीवशब्द, जीवअर्थ और जीवप्रत्यय यह तीनोंही असिद्ध हैं अर्थात् इनका अस्तित्व असिद्ध है तो जीवके अस्तित्वको मानकर वर्णाश्रमसंबंधी क्रियाओंमें प्रवृत्ति किस प्रकार ठीक होसक्ती है. जीवशब्दका वाच्य कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि आकाशके पुष्पसमान उसकी उपलब्धि (प्राप्ति) किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है, जैसे बाह्य पदार्थ कुछभी न होनेपर स्वप्नमें अनेक पदार्थ दीखते हैं उसही प्रकार विज्ञानही जीवाकार परिणमै है वास्तवमें जीव कोई पदार्थ नहीं है। विज्ञान स्वयं न तो जीवस्वरूप है कौर न अजीवस्वरूव है किंतु केवल प्रकाशमात्र है, और इसही लिये शब्दद्वारा उसका प्रतिपादनभी नहीं होसक्ता, कदाचित् उसका प्रतिपादनभी किया जाय तो जैसे स्वप्नमें बाह्यवस्तु न होनेपर असत् वस्तुके आकारसे ज्ञानका प्रतिपादन (कथन) किया जाता है, उसही प्रकार विज्ञानकाभी निरूपण असत् आकारसेही किया जाता है, और जब असत् आकारसे उसका निरूपण है तो आकाशकुसुम प्रत्यय (ज्ञान) की तरह जीव प्रत्यय (ज्ञान) भी कोई पदार्थ नहीं है. तथा जीवशब्दभी कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि जीवशब्द पदरूप अथवा वाक्यरूप इन दोनोंमेंसे एकरूपी सिद्ध नहीं होता उसका खुलासा इस प्रकार है कि, शब्द अनेक अक्षरोंका समूह है, उन अनेक अक्षरोंका एक कालमें उच्चारण नहीं हो सक्ता किन्तु उनका उच्चारण क्रमसे होता है; ये अक्षरभी वास्तवमें कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु

स्वप्नविषयक पदार्थोंके समान विज्ञानही स्वयं क्रमसे उन अनेक अक्षरस्वरूप परिणमै है इसलिये अनेक समयवर्ती विज्ञानोंका समूहही जीवशब्द है। स्वयं जीवशब्द कोई भिन्न पदार्थ नहीं है, इन विज्ञानोंमेंसे प्रत्येक विज्ञान क्षणिक है अर्थात् प्रतिसमय नाशमान है और प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थवशवर्ती है अर्थात् प्रतिसमय प्रत्येक पदार्थरूप परिणमै है, इसलिये एक विज्ञान अनेक समयवर्ती पदार्थोंका प्रतिभासक नहीं होसक्ता; जीवशब्द अनेक अक्षरोंका समूह है तथा वे अक्षरक्रमसे उच्चारित हैं और वे प्रत्येक अक्षर प्रत्येक समयवर्ती विज्ञानस्वरूप हैं और विज्ञान प्रतिसमय नाशमान् है इसलिये जीवशब्द कोई पदार्थही नहीं होसक्ता क्यों प्रथम समयवर्ती प्रथम अक्षररूप विज्ञानका, द्वितीयादि समयवर्ती द्वितीयादि अक्षररूप विज्ञानके समयमें अभाव है इसलिये जीवशब्द कोई पदार्थही सिद्ध नहीं होसक्ता (समाधान) ऐसा नहीं होसक्ता क्योंकि ऐसा माननेसे लोक प्रसिद्ध शब्द और अर्थके वाच्यवाचक सम्बन्धके अभावका प्रसंग आवैगा, और ऐसा होनेसे लोकव्यवहारमें विरोध आवैगा, तथा तुम्हारा जो नास्तित्वपक्ष है उसकी परीक्षा तथा साधनभी नहीं होसक्ता क्योंकि परीक्षा और साधन शब्दाधीन हैं और शब्दको तुम कोई पदार्थही नहीं मानते इसलिये तुम्हारा पक्षही सिद्ध नहीं होसक्ता, इस कारण कथंचित् जीव अस्तिस्वरूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है ऐसा अवश्य मानना चाहिये क्योंकि द्रव्यार्थिकनय पर्यायार्थिकनयको अपनाती हुई प्रवर्ते है और पर्यायार्थिकनय द्रव्यार्थिकनयको अपनाती हुई (अपेक्षा रखती हुई) प्रवर्तै है।

अब अवक्तव्यस्वरूप तीसरे भंगका स्वरूप लिखते हैं. द्रव्यार्थि-

कनयकी अपेक्षासे कथंचित् जीव अस्तिस्वरूप है, और पर्यायार्थिक-नयकी अपेक्षासे कथंचित् नास्तिस्वरूप है. जिससमय वस्तुका स्वरूप एक नयकी अपेक्षासे कहा जाता है उससमय दूसरी नय सर्वथा निरपेक्ष नहीं है, किन्तु जिसनयकी जहां विवक्षा होती है वह नय वहां प्रधान होती है और जिसनयकी जहां विवक्षा नहीं होती है वह वहां गौण होती है. वस्तुको पहले अनेकान्तात्मक कह आये हैं अर्थात् एकही समयमें एकही वस्तुमें अनेक धर्म होते हैं, उस अनेक धर्मात्मक समस्त वस्तुका किसी एक धर्म (गुण) द्वारा जिसवाक्यसे निरूपण किया जाता है वह वाक्य सकलादेशरूप होता है. उस सकलादेशरूप वाक्यद्वारा जिससमय वस्तुका निरूपण किया जाता है उससमय जिस गुणरूपसे वस्तुका निरूपण किया जाता है वह गुण तो प्रधान होता है और दूसरे गुण अप्रधान होते हैं. वस्तुके समस्तही गुण उस वस्तुमें एक समयमें पाये जाते हैं परन्तु शब्दमें इतनी शक्ति नहीं है कि, उन अनेक गुणोंका एक समयमें निरूपण कर सके, इसलिये शब्दद्वारा उनका निरूपण क्रमसे किया जाता है, "स्यादस्त्येव जीवः" इस प्रथमभंगमें अस्तित्व धर्मकी मुख्यता है और "स्यान्नास्त्येवजीवः" इस द्वितीयभंगमें नास्तित्वधर्मकी मुख्यता है, सो इन दोनों धर्मोंकी मुख्यतासे जीवका कथन एककालमें (युगपत्) नहीं है किन्तु क्रमसे (एकके पीछे दूसरा) है. यदि एकहीकाल (युगपत्) इन दोनों धर्मोंकी विवक्षा हो तो शब्दद्वारा उसका निरूपणही नहीं होसक्ता, क्योंकि शब्दमें ऐसी शक्तिही नहीं है अथवा संसारमें ऐसा कोई शब्दही नहीं है जो वस्तुके अनेक धर्मोंका निरूपण कर सके और न ऐसा कोई पदार्थही है कि, जिसमें एक कालमें एक शब्दसे अनेक गुणोंकी वृत्ति

५ उपकारकी अपेक्षासे भी गुण परस्पर अभिन्न नहीं हैं क्योंकि हलदादिरंगरूप द्रव्यसे जो वस्त्रादिक रंगे जाते हैं, सो उस हलदादिकमें वर्णगुणके जितने हीनाधिक अंश होते हैं उतना ही रंग वस्त्रपर चढता है, इसही प्रकार उसही हल्दमें रसगुणके जितने हीनाधिक अंश होते हैं उतनाही स्वाद उस हल्दसंयुक्त दालादिक पदार्थोंमें होता है। इससे सिद्ध होता है कि, एक पदार्थके अनेक गुणोंका उपकार भिन्न भिन्न है. उसही प्रकारसे जीवमेंभी सत्व और असत्व गुण भिन्न भिन्न हैं इसलिये उनका उपकार भी भिन्न भिन्न है. इस कारण अभेदस्वरूपसे उन दोनों धर्मोंका वाचक एक शब्द नहीं हो सक्ता।

६ गुणीके एक देशमें उपकारका संभव नहीं हैं जिससे कि, एक देशोपकारसे सहभाव होय, क्योंकि नीलादिक समस्त गुणके उपकारकपना है और वस्त्रादि समस्त द्रव्यके उपकार्यपना है, गुण उपकारक है और गुणी उपकार्य है, गुण और गुणीका एकदेश नहीं है जिससे कि, समस्त गुणगुणीके उपकार्यउपकारकरूप सिद्धि हो ही जाय और जिससे कि, देशसे सहभावसे किसी एकवाचक शब्दकी कल्पना की जाय।

७ एकांत पक्षमें गुणोंके मिश्रित अनेकान्तपना नहीं है क्योंकि जैसे शवल (चितकवरा) रंगमें अपने अपने भिन्न भिन्न स्वरूपको लिये हुए कृष्ण और श्वेतगुण भिन्न भिन्न हैं उसही प्रकार सत्व और असत्व गुणभी अपने अपने भिन्न भिन्न स्वरूपको लिये हुए भिन्न भिन्न है इसलिये एकांत पक्षमें संसर्गके अभावसे एक कालमें दोनों धर्मोंका वाचक एक शब्द नहीं है क्योंकि न तो पदार्थमें ही उस प्रकार प्रवर्तनेकी शक्ति है और न वैसे अर्थका सम्बन्ध ही है।

८ एक शब्द एक कालमें दो गुणोंका वाचक नहीं है, और जो ऐसा मानोगे तो सत् शब्द अपने अर्थकी तरह असत् अर्थका भी प्रतिपादक हो जायगा, और लोकमें ऐसी प्रतीति नहीं है क्योंकि उन दो अर्थोंके प्रतिपादक भिन्न भिन्न दो शब्द हैं।

इस प्रकार कालादिकसे युगपत्भाव (अभेदवृत्ति)के असंभव होनेसे (पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे) तथा एक समयमें अनेकार्थवाचक शब्दका अभाव होनेसे आत्मा अवक्तव्य है. अथवा एक वस्तुमें मुख्य प्रवृत्तिकारि तुल्यबलवाले दो गुणोंके कथनमें परस्पर प्रतिबन्ध (रुकावट) होनेपर प्रत्यक्षविरुद्ध तथा निर्गुणताका दोष आनेसे विवक्षित दोनों गुणोंका कथन न होनेसे आत्मा अवक्तव्य है. यह वाक्य भी सकलादेशरूप है, क्योंकि परस्पर भिन्नस्वरूपसे निश्चित गुणीके विशेषणपनेसे युगपत् विवक्षित और वस्तुके अविवक्षित अन्य धर्मोंको अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचारसे संग्रह करनेवाले सत्व और असत्व गुणोंसे अभेदरूप समस्त वस्तुके कथनकी अपेक्षा है. सो यद्यपि उपर्युक्त अपेक्षासे आत्मा अवक्तव्य शब्दसे तथा पर्यायान्तरकी विवक्षासे अन्य छह भंगोंसे वक्तव्य है इसलिये स्यात् अवक्तव्य है. यदि सर्वथा अवक्तव्य मानोगे, तो बंधमोक्षादि प्रक्रियाके निरूपणके अभावका प्रसंग आवेगा. और इनही दोनों धर्मोंके द्वारा क्रमसे निरूपण करनेकी इच्छा होनेपर उसही प्रकार वस्तुके सकलस्वरूपका संग्रह होनेसे चतुर्थ भंग (स्यादस्तिनास्ति च जीवः) भी सकलादेश है, और सो भी कथंचित् है यदि सर्वथा उभयस्वरूप मानोगे तो परस्पर विरोध आवेगा, तथा प्रत्यक्षविपरीत और निर्गुणताका प्रसंग आवेगा. अब आगे इन भंगोंके निरूपण करनेकी विधि लिखते हैं।

१ अर्थ दो प्रकारका होता है, एक श्रुतिगम्य, दूसरा अर्थाधिगम्य, जो शब्दके श्रवणमात्रसे प्राप्त हो तथा जिसमें वृत्तिके निमित्तकी अपेक्षा नहीं है उसको श्रुतिगम्य कहते हैं और जो प्रकरणसंभव अभिप्राय आदि शब्दन्यायसे कल्पना किया जाय उसको अर्थाधिगम्य कहते हैं. सो आत्मा अस्ति इस प्रथम भंगमें नरनारकादिक आत्माके समस्त भेदोंका आश्रय न करके इच्छाके वशसे कल्पित **सर्वसामान्य** वस्तुत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तदभाव (उसका प्रतिपक्षभूत अभावसामान्यरूप अवस्तुत्व) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् दोनोंकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३, और क्रमसे दोनोंकी अपेक्षासे दोनों स्वरूप हैं ४ ।

२ इसही प्रकार श्रुतिगम्य होनेसे **विशिष्टसामान्यरूप** आत्मत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप हैं १, **तदभावरूप** अनात्मत्वकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् दोनोंकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे दोनोंकी अपेक्षासे उभयस्वरूप हैं ४ ।

३ इसही प्रकार श्रुतिगम्य होनेसे **विशिष्टसामान्यरूप** आत्मत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, **तदभावसामान्य** (अंगीकृत प्रथम भंगसे विरोधके भयसे अन्य वस्तुस्वरूप पृथ्वी अप तेज वायु घट गुण कर्म आदिक) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ ।

४ **विशिष्टसामान्यरूप** आत्मत्वकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है १, **तद्विशेषरूप** मनुष्यत्वरूपकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४,

५ **सामान्यरूप** द्रव्यत्वकी अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, **विशिष्टसामान्यरूप** प्रतियोगी अनात्मत्वकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ ।

६ वस्तुकी यथासंभव विवक्षाको आश्रय करके **द्रव्यसामान्यकी** अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, तत्प्रतियोगी **गुणसामान्यकी** अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ ।

७ त्रिकालगोचर अनेक शक्तिस्वरूप ज्ञानादिक **धर्मसमुदायकी** अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, **तद्व्यतिरेक** (अनेक धर्मसमुदायके विपक्ष) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यस्वरूप है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ ।

८ **धर्मसामान्यसम्बन्धकी** विवक्षासे किसी भी धर्म (गुण) का आश्रय होनेसे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, **तदभाव** (किसीभी धर्मका आश्रय न होने) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ ।

९ अस्तित्व, नित्यत्व, निरवयवत्व आदि किसी एक **धर्मविशेषसंबंधकी** अपेक्षासे आत्मा अस्तिस्वरूप है १, **तदभाव** (उसके प्रतिपक्षी किसी एक धर्म विशेषसंबंध) की अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है २, युगपत् उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्य है ३, और क्रमसे उभयकी अपेक्षासे उभयस्वरूप है ४ । अब आगे पांचवें भंगका स्वरूप लिखते हैं ।

तथापि व्यसनित्व और धर्मात्मत्व गुणकी अपेक्षासे अनेक स्वरूप कहा जाता है। गुणोंके समुदायको ही द्रव्य कहते हैं। गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ नहीं है, गुण अनेक हैं और परस्पर भिन्न स्वरूप हैं, इसलिये उन अनेक गुणोंके समुदायरूप अखंड एक द्रव्यको पूर्व-कथित कालादिककी भेद विवक्षासे अनेकस्वरूप निश्चय करनेको विकलादेश कहते हैं.

सकलादेशकी तरह विकलादेशमेंभी सप्तभंगी है। उसका खुलासा इस प्रकार है कि, गुणीको भेदरूप करनेवाले अंशोंमें क्रमसे, युग-पत्पनेसे तथा क्रम और युगपत्पनेसे विवक्षाके वशसे विकलादेश होते हैं। अर्थात् प्रथम और द्वितीय भंगमें असंयुक्त क्रम है, तीसरे भंगमें युगपत्पना है, चतुर्थमें संयुक्त क्रम है, पांचवें और छटे भंगमें असंयुक्तक्रम और यौगपद्य है, और सातवेंमें संयुक्तक्रम और यौगपद्य हैं, भावार्थ—सामान्यादिक द्रव्यार्थादेशोंमेंसे किसीएक धर्मके उपलभ्य-मान (प्राप्त) होनेसे "स्यादस्त्येवात्मा" यह पहला विकलादेश है। यहां दूसरे धर्मोंका आत्मामें सद्भाव होनेपरभी पूर्वोक्त काला-दिककी भेद विवक्षासे शब्दद्वारा निरूपणभी नहीं है और निरास (खंडन) भी नहीं है इसलिये न उनकी विधि है और न प्रतिषेध है. इसही प्रकार दूसरे भंगोंमेंभी विवक्षित अंशमात्रका निरूपण और शेषधर्मोंकी उपेक्षा (उदासीनता) होनेसे विकलादेश कल्पना लगाना। इस विकलादेशमेंभी विशेष्यविशेषणभाव द्योतनके लिये विशे-षणके साथ अवधारण (नियम) वाचक एव शब्दका प्रयोग किया गया है. इस एव शब्दके प्रयोगसे अवधारण होनेसे अस्तित्व भिन्न अन्यधर्मोंकी निवृत्तिका प्रसंग आता है इसही कारण यहांभी स्यात् शब्दका प्रयोग किया है। भावार्थ—स्यात्शब्दका प्रयोग करनेसे यह

द्योतन किया है कि, आत्मामें जैसे अस्तित्वधर्म है उसही प्रकार नास्तित्वादिक अनेक धर्म हैं. सकलादेशमें उच्चारित धर्मकेद्वारा शेष-समस्त धर्मोंका संग्रह है और विकलादेशमें केवल शब्दद्वारा उच्चारित धर्मकाही ग्रहण है शेषधर्मोंकी न विधि हैं और न निषेध है। इस प्रकार आदेशके वशसे सप्तभंग होते हैं क्योंकि अन्यभंगोकी प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव है, अर्थात् भंग सातही हैं हीनाधिक नहीं हैं। इसका खुलासा इसप्रकार है कि, वस्तुमें किसीएक धर्म तथा उसके प्रति-योगी धर्मकी अपेक्षासे सात भंग होते हैं, अर्थात् वस्तु किसीएक धर्मकी अपेक्षासे कथंचित् अस्तिस्वरूप है, उसके प्रतियोगी धर्मकी अपेक्षासे नास्तिस्वरूप है और दोनोंकी युगपत् विवक्षासे अवक्तव्य-स्वरूप है, इसप्रकार वस्तुमें किसीएक धर्म और उसके प्रतियोगीकी अपेक्षासे अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन धर्म होते हैं। इन तीन धर्मोंके संयुक्त और असंयुक्त सातहीभंग होते हैं, न हीन होते हैं और न अधिक होते हैं। भावार्थ—जैसे नौन, मिरच और खटाई इन तीन पदार्थोंके संयुक्त और असंयुक्त सातही स्वाद होसक्ते हैं हीनाधिक नहीं होसक्ते अर्थात् एक नौनका स्वाद, दूसरा मिरचका-स्वाद और तीसरा खटाईकास्वाद, इसप्रकार तीन तो असंयुक्तस्वाद हैं और एक नौन और मिरचका, दूसरा नौन और खटाईका, तीसरा मिरच और खटाईका, और चौथा नौन मिरच और खटाईका, इस-प्रकार चार संयुक्तस्वाद हैं, सब मिलकर सातही स्वाद होते हैं हीनाधिक नहीं होते। इसही प्रकार जीवमेंभी अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन तो असंयुक्त भंग हैं और अस्तिनास्ति, अस्तिअवक्तव्य नास्तिअवक्तव्य और अस्तिनास्तिअवक्तव्य ये चार संयुक्तभंग हैं, सब मिलकर सातहीभंग होते हैं, हीनाधिक नहीं होते, क्योंकि हीनाधिक

भंगकी प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव है। यह मार्ग द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयोंके आश्रित है। इन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंकेही संग्रहादिक भेद हैं. इन संग्रहादिकमेंसे संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र ये तीन नय तो अर्थनय हैं, और शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीन शब्दनय हैं. समस्त वस्तुस्वरूपोंको सत्तामें गर्भित करके संग्रह करनेसे संग्रहनयका विषय सत्ता है. व्यवहारनयका विषय असत्ता है क्योंकि यह नय भिन्न भिन्न सत्ताका संग्रह न करके अन्यकी अपेक्षासे असत्ताकी प्रतीति उत्पन्न करती है। ऋजुसूत्रनय वर्तमानपर्यायको विषय करती है, क्योंकि अतीतका नाश हो चुका और अनागत अभी उत्पन्नही नहीं हुआ है इसलिये उनके व्यवहारका अभाव है, इसप्रकार ये तीन अर्थनय हैं। इन नयोंकी अपेक्षासे संयुक्त और असंयुक्त सप्तभंग बनते हैं उनका खुलासा इसप्रकार है कि, संग्रहनयकी अपेक्षासे प्रथमभंग है १। व्यवहारनयकी अपेक्षासे दूसरा भंग है २। युगपत् संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षासे तीसरा भंग है ३। क्रमसे संग्रह और व्यवहारनयकी अपेक्षासे चतुर्थ भंग है ४। संग्रह और युगपत् संग्रह व्यवहारनयकी अपेक्षासे पंचमभंग है ५। व्यवहार और युगपत् संग्रहव्यवहारनयकी अपेक्षासे छठा भंग है ६। क्रमसे संग्रह व्यवहार और युगपत् संग्रह व्यवहारनयकी अपेक्षासे सातवां भंग है ७। इसहीं प्रकार ऋजुसूत्रमेंभी लगा लेना. पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं उनमें ऋजुसूत्रनयका विषय अर्थपर्याय है और शब्द समभिरूढ और एवंभूत इन तीन शब्दनयोंका विषय व्यंजनपर्याय है, सो ये शब्दनय अभेद कथन और भेदकथनकी अपेक्षासे शब्दमें दो प्रकारकी कल्पना करती है, जैसे शब्दनयमें पर्यायवाचक अनेक शब्दोंका प्रयोग

होनेपरभी अभेदविवक्षासे उस एकही पदार्थका ग्रहण होता है तथा समभिरूढनयमें साक्षादिमान् पदार्थ चाहे गतिरूप परिणमै चाहे अन्य क्रियारूप परिणमै परन्तु अभेदविवक्षासे उसमें गो शब्दकीही प्रवृत्ति होती है इसलिये शब्द और समभिरूढ इन दोनों नयोंसे अभेद प्रतिपादन होता है, और एवंभूतनयमें जिस क्रियाका वाचक वह शब्द है उसही क्रियारूप जब वह पदार्थ परिणमै है उससमय वह पदार्थ उस शब्दका वाच्य है इसलिये एवंभूतनयमें भेद कथन है. अथवा दूसरी तरहसे दो प्रकारकी कल्पना है, अर्थात् एक पदार्थमें अनेक शब्दोंकी प्रवृत्ति है १ तथा प्रत्येक पदार्थवाचक प्रत्येक शब्द है २, जैसे शब्दनयमें एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द हैं और समभिरूढनयमें पदार्थपरिणतिके निमित्तकेविना एक पदार्थका वाचक एक शब्द है तथा एवंभूतनयमें पदार्थकी वर्तमान परिणतिके निमित्तसे एक पदार्थका वाचक एक शब्द है ।

(शंका) एक पदार्थमें अस्तित्व नास्तित्वादिक परस्पर विरुद्ध धर्म होनेसे विरोध दोष आता है ।

(समाधान) एक वस्तुमें अस्तित्व नास्तित्वाधिक धर्म अपेक्षासे कहे हैं इसलिये इनमें विरोध नहीं है और न विरोधका लक्षण यहां घटित होता है उसका खुलासा इसप्रकार है कि, विरोधके तीन भेद हैं १ वध्यघातक, २ सहानवस्थान, और ३ प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक, सो सर्प और न्यौलेमें तथा अग्नि और जलमें वध्यघातकरूप विरोध है, यह वध्यघातक विरोध एक कालमें विद्यमान दो पदार्थोंके संयोगसे होता है । संयोगके विना जल, अग्निको बुझा नहीं सकता । यदि संयोगके विना भी जल अग्निको बुझा देगा, तो संसारमें अग्निके अभावका प्रसंग आवेगा । इसलिये संयोग होनेके पश्चात् बलवान्

रूप जो पदार्थ दीखते हैं, उन सबके अभावका प्रसंग आवेगा। सिवाय इसके अद्वैतकी सिद्धि किसी हेतुसे करते हो, या विना हेतु ही सिद्ध मानते हो? यदि हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि करते हो, तो हेतु और साध्यका द्वैत हो गया। और जो हेतुके विना ही वचनमात्रसे अद्वैत की सिद्धि मानते हो तो वचनमात्रसे द्वैतकी सिद्धि क्यों न होगी? अथवा जैसे हेतुके विना अहेतु नहीं हो सकता, भावार्थ—अग्निकी सिद्धिके वास्ते धूमहेतु है और जलादिक अहेतु हैं। सो जो धूमहेतु ही न होय, तो जलादिक अहेतु नहीं वन सकते। क्योंकि निषेधयोग्य पदार्थके विना उसका निषेध नहीं हो सकता। इसलिये द्वैतके विना अद्वैतकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे किसीने कहा कि, यह घट नहीं है। इस वाक्यसे ही सिद्ध होता है कि, घट कोई पदार्थ है, जो कि यहां नहीं है। इस ही प्रकार द्वैतके विना अद्वैत कदापि नहीं हो सकता।

४ अद्वैतएकान्तपक्षमें अनेक दोष होनेसे कितने ही महाशय **पृथक्त्वएकान्त** (भेदएकान्त) पक्षका अवलम्बन करते हैं। उनके मतमें "पृथक्त्व नामक एक गुण है, जो समस्तपदार्थोंमें रहता है। और इस ही गुणके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका भिन्न भिन्न प्रतिभास होता है। यदि यह पृथक्त्व गुण न होय, तो समस्त पदार्थ एकरूप हो जाँय" ऐसा माना है, सो इस एकान्त पक्षमें भी अनेक दोष आते हैं। उनका खुलासा इस प्रकार है कि, घट पदार्थमें घटत्व नामक एक सामान्यधर्म है। यह धर्म संसारभरमें जितने घट हैं, उन सबमें रहता है। यदि यह सामान्यधर्म समस्त घटोंमें नहीं रहता, तो उन समस्त घटोंमें "यह घट है" "यह घट है" ऐसा ज्ञान नहीं होता। इसलिये घटत्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्त

घट एक हैं । इस ही प्रकार पटत्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्तपट एक हैं, तथा जीवत्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्त जीव एक हैं। और इस ही प्रकार पृथक्त्वगुण भी समस्त पदार्थोंमें रहनेवाला है, अन्यथा समस्त पदार्थोंमें 'यह भिन्न है' 'यह भिन्न है' ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये पृथक्त्वसामान्यकी अपेक्षासे समस्त पदार्थ एक हैं। यदि पृथक्त्वसामान्यकी अपेक्षासे भी सब पदार्थोंको एक नहीं मानोगे, भिन्न भिन्न मानोगे तो, पृथक्त्व यह उनका गुण ही नहीं हो सकता। क्योंकि यह गुण अनेक पदार्थोंमें रहनेवाला है। परन्तु पृथक्त्वगुणकी अपेक्षा सबको भिन्न भिन्न माननेवालेके पृथक्त्वगुण अनेक पदार्थस्थ नहीं हो सकता, किन्तु भिन्न भिन्न पदार्थका भिन्न भिन्न पृथक्त्वगुण ठहरेगा और ऐसा होनेपर उस गुणके अनेकताका प्रसंग आवेगा। किन्तु सामान्यधर्म एक होकर अनेकमें रहनेवाला है, इसलिये पृथक्त्व सामान्यकी अपेक्षासे समस्त पदार्थ एक हैं। अथवा भेदएकान्तपक्षमें किसी भी प्रकारसे एकता न होनेसे सन्तान (अपने सामान्य धर्मको विना छोड़े उत्तरोत्तरक्षणमें होनेवाले परिणामको सन्तान कहते हैं, जैसे गोरसके दूध दही, छांछ, घी सन्तान हैं।) समुदाय (युगपत् उत्पत्तिविनाशवाले रूपरसादिक सहभावी धर्मोंके नियमसे एकत्र अवस्थानको समुदाय कहते हैं), घटपटादि पदार्थके पुद्गलत्व आदिकी अपेक्षासे साधर्म्य (सदृशता) और प्रेत्यभाव (एक प्राणीका मरणके पश्चात् दूसरी गतिमें उत्पाद) ये एक भी नहीं बन सकते।

अथवा यदि सत्स्वरूपसे भी ज्ञान ज्ञेयसे भिन्न है, तो दोनोंके अभावका प्रसंग आवेगा। क्योंकि ज्ञानका विषय होनेसे ज्ञानके होनेपर ही ज्ञेय हो सकता है, तथा ज्ञेयके होनेपर ही ज्ञान हो

सकता है । क्योंकि ज्ञान ज्ञेयका परिच्छेदक (भिन्न करनेवाला) है । इस प्रकार भेदएकान्तमें अनेक दोष आते हैं । (तथा उभय-एकान्त और अवाच्यएकान्तमें त्रिविरोधादिक दोप पूर्ववत् लगा लेना और इस ही प्रकार आगे भी घटित कर लेना ।) इसलिये वस्तुका स्वरूप कथंचित् अभेद रूप है, कथंचित् भेदरूप है । अपेक्षाके विना भेद तथा एक भी सिद्ध नहीं हो सकते । भावार्थ—सत्ता-सामान्यकी अपेक्षा होनेपर अभेदविवक्षासे समस्त पदार्थ अभेदस्वरूप हैं, तथा द्रव्य, गुण, पर्याय अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा होनेपर भेदविवक्षा होनेसे समस्त पदार्थ भेदस्वरूप हैं । इस प्रकार नित्यएकान्त अनित्यएकान्त आदिक अनेक एकान्तपक्ष हैं जिनमें अनेक दोष आते हैं । इसका सविस्तर कथन अष्टसहस्रीमें किया है, वहांसे जानना चाहिये ।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें द्रव्यसामान्यनिरूपणनामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ।

तीसरा अधिकार ।

(अजीवद्रव्यनिरूपण)

पहले अधिकारमें द्रव्य सामान्यका निरूपण हो चुका; अब द्रव्य विशेषका निरूपण करनेका समय है । परन्तु द्रव्यविशेषका स्वरूप अलौकिकगणितके जाने विना अच्छी तरह समझमें नहीं आ-सकता । क्योंकि द्रव्योंका छोटापन और बड़ापन, तथा गुणोंकी मन्दता और तीव्रता और कालका परिमाण आदिकका निरूपण पूर्वाचार्योंने अलौकिकगणितके द्वारा ही किया है । इसलिये द्रव्य-

विशेषका निरूपण करनेसे पहले अलौकिकगणितका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है ।

अलौकिकगणितके मुख्य दो भेद हैं, एक संख्यामान और दूसरा उपमामान । संख्यामानके मूल तीन भेद हैं अर्थात् १ संख्यात, २ असंख्यात और ३ अनन्त । असंख्यातके तीन भेद हैं अर्थात् १ परीतासंख्यात, २ युक्तासंख्यात और ३ असंख्यातासंख्यात । अनन्तके भी तीन भेद हैं अर्थात् १ परीतानन्त, २ युक्तानन्त और ३ अनन्तानन्त । संख्यातका एक भेद और असंख्यात और अनन्तके तीन तीन भेद, सब मिलकर संख्यामानके सात भेद हुए । इन सातोंमेंसे प्रत्येकके जघन्य (सबसे छोटा), मध्यम (बीचके), उत्कृष्ट (सबसे बड़ा) की अपेक्षासे तीन तीन भेद हैं, इस प्रकार संख्यामानके २१ भेद हुए ।

एकमें एकका भाग देनेसे अथवा एकको एकसे गुणाकार करनेसे कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती है । इसलिये संख्याका प्रारंभ दोसे ग्रहण किया है । और एकको गणना शब्दका वाच्य माना है, इसलिये जघन्य संख्यातका प्रमाण दो है । तीन चार पांच इत्यादि एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यातके भेद हैं । एक कम जघन्य परीतासंख्यातको उत्कृष्टसंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण कितना है, सो लिखते हैं ।

अलौकिकगणितका स्वरूप लौकिकगणितसे कुछ विलक्षण है । लौकिकगणितसे स्थूल और स्वल्पपदार्थोंका परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिकगणितसे सूक्ष्म और अनन्तपदार्थोंकी हीनाधिकताका बोध कराया जाता है । हमारे बहुतसे संकीर्णहृदय भाई अलौकिक-

गणितका स्वरूप सुनकर चकित होते हैं । और कहते हैं कि, ऐसा गणित हो ही नहीं सकता, परन्तु उनके ऐसे कहनेसे कुछ उस गणितका अभाव नहीं हो जायगा । संसारमें एक दन्तकथा प्रसिद्ध है कि, एक समय एक राजहंस एक कुएमें गया । कुएके मेंडकने राजहंसका स्वागत करके उच्चासन देकर प्रसंगवश पूछा कि, क्यों जी! आपका मान सरोवर कितना बड़ा है?

राजहंस—भाई मान सरोवर बहुत बड़ा है ।

मेंडक—(एक हाथ लम्बा करके) क्या इतना बड़ा है?

रा०—नहीं भाई! इससे बहुत बड़ा है ।

में०—(दोनों हाथ लम्बे करके) तो क्या इतना बड़ा है?

रा०—नहीं! नहीं! इससे भी बहुत बड़ा है ।

में०—(कुएके एक तटसे साम्हनेके दूसरे तट पर उछलकर) तो! क्या इससे भी बड़ा है?

रा०—हां! भाई! इससे भी बहुत बड़ा है ।

में०—(झुंझला कर) बस! तुम बड़े झूठे हो! इससे बड़ा हो ही नहीं सकता!

राजहंस मेंडकको मूर्ख समझकर चुप हो गया और उड़कर अपने स्थानको चला गया । इस प्रकार कुएके मेंडककी तरह जो महाशय संकीर्णबुद्धिवाले है, उनकी समझमें अलौकिकगणितका स्वरूप प्रवेश नहीं कर सकता । किन्तु जिनकी बुद्धि गौरवयुक्त है, वे अच्छी तरह समझ सकते हैं । जघन्य परीतासंख्यातका स्वरूप समझनेके लिये जो उपाय लिखा जाता है, वह किसीने किया नहीं था, किन्तु बड़े गणितका परिमाण समझनेके लिये एक कल्पित उपाय मात्र है ।

उस ही क्रमसे दूसरी सरसों महाशलाका कुंडमें डालिये । इसही प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी एक एक सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जव महाशलाका कुंड भी भर जाय, उस समय सवसे वडे अन्तके अनवस्था कुंडमें जितनी सरसों समाई, उतना ही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है।

संख्यामानके मूलभेद सात कहे थे, इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे २१ भेद हैं। आगेके मूल भेदके जघन्य भेदमेंसे एक घटानेसे पिछले मूलभेदका उत्कृष्ट भेद होता है। जैसे जघन्य परीतासंख्यातमेंसे एक घटानेसे उत्कृष्टसंख्यात तथा जघन्ययुक्तासंख्यातमेंसे एक घटानेसे उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है। इसही प्रकार अन्यत्र भी जानना। जघन्य और उत्कृष्ट भेदोंके वीचके सव भेद मध्यम भेद कहलाते हैं। इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्टके स्वरूप जघन्यके स्वरूप जाननेसेही माळूम हो सकते हैं। इसलिये अत्र आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखा जाता है। जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यातका स्वरूप ऊपर लिखा जा चुका है, अव आगे जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण लिखते हैं।

जघन्यपरीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना। एक विरलन राशि और दूसरी देय राशि। विरलन राशिका विरलन करना, अर्थात् विरलन राशिका जितना प्रमाण है, उतने एक लिखना, और प्रत्येक एकके ऊपर एक एक देयराशि रखकर, समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणन करनेसे जो गुणन फल हो, उतना ही जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण है। भावार्थ—यदि जघन्यपरीतासंख्यातका प्रमाण चार ४ माना जाय, तो चारका विरलन कर १ १ १ १ प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि चार चार रखकर $\frac{4}{1}\ \frac{4}{1}\ \frac{4}{1}\ \frac{4}{1}$ चारों चौकोंका

परस्पर गुणन करनेसे गुणनफल २५६ जघन्ययुक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इस ही जघन्य युक्तासंख्यातको आवली भी कहते हैं । क्योंकि एक आवलीमें जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसहीसे गुणाकार करनेसे जो गुणनफल होता है, उसको वर्ग कहते हैं । जैसे पांचका वर्ग पच्चीस है ।) को जघन्यअसंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानन्तका प्रमाण कहते हैं ।

जघन्यअसंख्यातासंख्यात प्रमाण तीन राशि लिखनी, अर्थात् १ विरलन, २ देय, ३ शलाका । विरलन राशिका विरलन कर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना, और शलाका राशिमेंसे एक घटाना । इस पाये हुए गुणनफल प्रमाण एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशि करना । विरलन राशिका विरलन कर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाका राशिमेंसे एक और घटाना । इस दूसरी वार पाये हुए गुणनफलप्रमाण पुनः विरलन और देय राशिकरना और पूर्वोक्तानुसार देय राशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाका राशिमेंसे एक और घटना । इसही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफलप्रमाण विरलन और देयके क्रमसे एक एक वार देय राशियोंका गुणाकार होनेपर शलाका राशिमेंसे एक एक घटाते घटाते जब शलाका राशि समाप्त हो जाय, उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय, उस प्रमाण पुनः विरलन, देय, और शलाका ये तीन राशि लिखनी । विरलन राशिका विरलन-कर, प्रत्येक एकके ऊपर देय राशि रख, देय राशिका परस्पर गुणाकार करते करतें पूर्वोक्त क्रमानुसार एक वार देय राशियोंका गुणाकार

होनेपर शलाका राशिमेंसे एक एक घटाते घटाते जब यह द्वितीय: वार स्थापन की हुई शलाका राशि भी समाप्त हो जाय, उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुनः विरलन, देय, और शलाका ये तीन राशि लिखनी । पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरी वार स्थापन हुई शलाकाराशि भी समाप्त हो जाय, उस समय यह अन्तिम गुणफलरूप जो महाराशि हुई, वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है।

कथित क्रमानुसार तीन वार तीन तीन राशियोंके गुणनविधानको शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं। आगे भी जहां 'शलाकात्रयनिष्ठापन' ऐसा पद आवे, वहां ऐसा ही विधान समझ लेना । इस महाराशिमें लोक प्रमाण (लोकका प्रमाण उपमा मानके कथनमें किया जायगा) १ धर्म द्रव्यके प्रदेश, २ लोक प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, ३ लोक प्रमाण एक जीवके प्रदेश, ४ लोकप्रमाण लोकाकाशके प्रदेश, ५ लोकसे असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण (इसका स्वरूप आगे कहेंगे), और ६ उससे भी असंख्यात-लोकगुणा तथापि सामान्यतासे असंख्यातलोकप्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक-वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण, ये छह राशि मिलाना । इस योगफल प्रमाण विरलन, देय और शलाका, ये तीन राशि स्थापन कर पूर्वोक्तनुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो, उसमें १ वीस कोड़ाकोड़ि सागर (इसका स्वरूप आगे कहेंगे) प्रमाण कल्पकालके समय, २ असंख्यात लोक-प्रमाणस्थितिबन्धाध्यवसायस्थान (स्थितिबन्धको कारणभूत आत्माके परिणाम), ३ इनसे भी असंख्यात लोक गुणें तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान (अनुभाग बन्धको कारण-

भूत आत्माके परिणाम) और ४ इनसे भी असंख्यातलोकगुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मनवचनकाय योगोंके अविभागप्रतिच्छेद ये चार राशि मिलाना । इस दूसरे योगफल प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीन राशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानन्त कहते हैं । जघन्यपरीतानन्तका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्यपरीतानन्त रख कर सब जघन्यपरीतानन्तोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसको जघन्ययुक्तानन्त कहते हैं । अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्ययुक्तानन्तके समान है । जघन्ययुक्तानन्तके वर्गको जघन्यअनन्तानन्त कहते हैं । अब आगे केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्तका स्वरूप लिखते हैं ।

जघन्यअनन्तानन्तप्रमाण विरलन, देय और शलाका, ये तीन स्थापनकर शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो, वह अनन्तानन्तका एक मध्यम भेद है । [अनन्तके दूसरे दो भेद हैं, एक सक्षयअनन्त और दूसरा अक्षयअनन्त । यहां तक जो संख्या हुई, वह सक्षय अनन्त है इससे आगे अक्षयअनन्तके भेद हैं । क्योंकि इस महाराशिमें आगे छह राशि अक्षयअनन्त मिलाई जाती हैं । नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते करते जिस राशिका अन्त नहीं आवे, उसको अक्षय अनन्त कहते हैं (इसकी सिद्धि जीवद्रव्याधिकारमें करेंगे)] इस महाराशिमें १ जीवराशिके अनन्तमें भाग सिद्धराशि, २ सिद्ध राशिसे अनन्तगुणी निगोदराशि, ३ वनस्पतिराशि, ४ जीवराशिसे अनन्तगुणी पुद्गलराशि, ५ पुद्गलसे भी अनन्तगुणे तीन कालके समय, और ६ अलोका-

काशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योग फल हो, उस प्रमाण विरलन, देय, शलाका ये तीन राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमें धर्मद्रव्य और अधर्म-द्रव्यके अगुरुलघुगुणके अनन्तानन्त अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर, योगफल प्रमाण विरलन, देय, शलाका स्थापन कर पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करना । इसप्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनन्तानन्तका भेदरूप जो महाराशि हुई, उसको केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेष बचे, उसमें पुनः वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है । उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेंसे घटाकर पुनः मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बड़ा है । उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करनेपर भी केवलज्ञानके प्रमाणसे बहुत कमती रहता है । इसलिये केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है । इस प्रकार संख्यामानके २१ भेदोंका कथन समाप्त हुआ । अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते हैं ।

जो प्रमाण किसी पदार्थकी उपमा देकर कहा जाता है, उसे उपमामान कहते हैं । उपमामानके आठ भेद हैं । १ पल्य (यहां पल्य अर्थात् खासकी उपमा है), २ सागर (यहां लवणसमुद्रकी उपमा है), ३ सूच्यङ्गुल, ४ प्रतराङ्गुल, ५ घनाङ्गुल, ६ जगच्छ्रेणी, ७ जगत्प्रतर और ८ लोक । पल्यके तीन भेद हैं;—१ व्यवहारपल्य, २ उद्धारपल्य और ३ अद्धापल्य । व्यवहारपल्यका

स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है । पुद्गलके सबसे छोटे खंडको परमाणु कहते हैं । अनन्तानन्त परमाणुओंके स्कन्धको अवसन्नासन्न कहते हैं । आठ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, आठ सन्नासन्नका एक तृटरेणु, ८ तृटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणु एक रथरेणु, ८ रथरेणुका एक उत्तम भोगभूमिवालोंका वालाग्र, ८ उत्तमभोगभूमिवालोंके वालाग्रका एक मध्यमभोगभूमिवालोंका वालाग्र, ८ मध्यमभोगभूमिवालोंके वालाग्रका एक जघन्यभोगभूमिवालोंका वालाग्र, ८ जघन्य भोगभूमिवालोंके वालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका वालाग्र, ८ कर्मभूमिवालोंके वालाग्रकी एक लीख, आठ लीखोंकी एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, और आठ जौका एक अंगुल होता है । इस अंगुलको उत्सेधांगुल कहते हैं । चतुर्गतिके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर और मन्दिरआदिकका परिमाण इस ही अंगुलसे वर्णन किया जाता है । इस उत्सेधांगुलसे पांचसो गुणा प्रमाणांगुल (भरतक्षेत्रके अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्त्तीका अंगुल) है । इस प्रमाणांगुलसे पर्वत नदी द्वीप समुद्र इत्यादिकका प्रमाण कहा जाता है । भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने अपने कालमें जो अंगुल है, उसे आत्मांगुल कहते हैं । इससे झारी कलश धनुष् ढोल हलमूशल छत्र चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है । ६ अंगुलका एक पाद, २ पादका एक विलस्त, २ विलस्तका एक हाथ, ४ हाथका एक धनुष्, २००० धनुष्का एक कोश, और चार कोशका एक योजन होता है । प्रमाणांगुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासवाला एक गोल गर्त्त (गढ़ा) बनाना । उस गर्त्तको उत्तमभोगभूमिवाले मेंढेके वालोंके अग्रभागोंसे भरना । गणित करनेसे उस गर्त्तके रोमोंकी संख्या

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००० ०००००००० ००००००० हुई। इस गर्तके एक एक रोमको सौ सौ वर्ष पीछे निकालते निकालते जितने कालमें वे सब रोम समाप्त हो जांय, उतने कालको व्यवहारपल्यका काल कहते हैं। उपर्युक्त रोम-संख्याको सौ वर्षके समयसमूहसे गुणा करनेसे व्यवहारपल्यके समयोंका प्रमाण होता है। (एक वर्षके दो अयन, एक अयनकी तीन ऋतु, एक ऋतुके दो मास, एक मासके तीस अहोरात्र, एक अहोरात्रके तीस मुहूर्त, एक मुहूर्त्तकी संख्यात आवली और एक आवलीके जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं)। व्यवहार-पल्यके एक एक रोमखंडके असंख्यातकोटिवर्षके समयसमूहप्रमाण खंड करनेसे उद्धारपल्यके रोमखंडोंका प्रमाण होता है। जितने उद्धारपल्यके रोमखंड हैं उतने ही उद्धारपल्यके समय जानने। एक कोटिके वर्गको कोड़ाकोड़ि कहते हैं। द्वीप समुद्रोंकी संख्या, उद्धार-पल्यसे है। अर्थात् उद्धारपल्यके समयोंको २५ कोड़ाकोड़िसे गुणा करनेसे जो गुणनफल होता है, उतने ही समस्त द्वीपसमुद्र हैं। उद्धारपल्यके प्रत्येक रोमखंडके असंख्यात वर्षके समयसमूहप्रमाण खंड करनेसे अद्धापल्यके रोमखंड होते है। जितने अद्धापल्यके रोमखंड हैं, उतने ही अद्धापल्यके समय हैं। कर्मोंकी स्थिति अद्धा-पल्यसे वर्णन की गई है। पल्यको दस कोड़ाकोड़िसे गुणा करनेसे सागर होता है। अर्थात् दस कोड़ाकोड़ि व्यवहारपल्यका एक व्यवहारसागर, दस कोड़ाकोड़ि उद्धारपल्यका एक उद्धारसागर और दस कोड़ाकोड़ि अद्धापल्यका एक अद्धासागर होता है। किसी राशिको जितनी वार आधा आधा करनेसे एक शेष रहे, उसको अर्द्धच्छेद कहते हैं। जैसे चारको दो वार आधा आधा करनेसे एक

होता है, इसलिये चारके अर्द्धच्छेद दो हैं । आठके तीन, सोलहके चार और बत्तीसके अर्द्धच्छेद पांच हैं । इस ही प्रकार सर्वत्र लगा लेना । अद्धापल्यकी अर्द्धच्छेद राशिका विरलनकर प्रत्येक एकेके ऊपर अद्धापल्य रखकर समस्त अद्धापल्योंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न होय, उसे सूच्यंगुल कहते हैं । अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौड़े ऊंचे आकाशमें इतने प्रदेश हैं । सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल और घन (एक राशिको तीन वार परस्पर गुणा करनेसे जो गुणनफल होय, उसे घन कहते हैं । जैसे दोका घन आठ और तीनका घन सत्ताईस है ।) को घनांगुल कहते हैं । पल्यकी अर्द्धच्छेदराशिके असंख्यातवें भागका विरलनकर प्रत्येक एकेके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणनफल होय, उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं । जगच्छ्रेणीमें सातका भाग देनेसे जो भजलफल होय, उसे राजू कहते हैं । अर्थात् सात राजूकी एक जगच्छ्रेणी होती है । जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं । यह तीन लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है । इस प्रकार उपमामानका कथन समाप्त हुआ ॥ इन मानके भेदोंसे द्रव्यक्षेत्रकाल और भावका परिमाण किया जाता है । भावार्थ—जहां द्रव्यका परिणाम कहा जाय, वहां उतने जुदे जुदे पदार्थ जानना । जहां क्षेत्रका परिमाण कहा जाय, वहां उतने प्रदेश जानने । जहां कालका परिणाम कहा जाय, वहां उतने समय जानने । और जहां भावका परिणाम कहा जाय, वहां उतने अविभागप्रतिच्छेद जानने । इस प्रकार अलौकिक गणितका संक्षेप कथन समाप्त हुआ । अब आगे अजीवद्रव्यका स्वरूप लिखते हैं;—

द्रव्यके मूल भेद दो हैं, एक जीव दूसरा अजीव । जो चेतनागुणविशिष्ट होय, उसको जीव कहते हैं । और जो चेतनागुणरहित अचेतन अर्थात् जड़ होय, उसको अजीव कहते हैं । यद्यपि पूर्वाचार्योंने द्रव्यका विशेष निरूपण करते समय पहले जीवद्रव्यका वर्णन किया है और पीछे अजीवद्रव्यका वर्णन किया है, क्योंकि समस्त द्रव्योंमें जीव ही प्रधान है, परन्तु इस ग्रंथकी प्रारंभीय भूमिकामें हम ऐसी प्रतिज्ञा कर आये हैं कि, यह ग्रंथ ऐसे क्रमसे लिखा जायगा कि, जिससे वाचकवृन्द गुरुकी सहायताके विना स्वतः समझ सकें । इसलिये यदि जीवद्रव्यका कथन पहले किया जाता, तो जीवके निवासस्थान लोकाकाश, तथा जीवकी अशुद्धताके कारणभूत पुद्गलद्रव्यका स्वरूप समझे विना जीवद्रव्यका कथन अच्छी तरह समझमें नहीं आता । सिवाय इसके जीवद्रव्यके कथनमें वहुत कुछ वक्तव्य है और अजीवद्रव्यका कथन जीवद्रव्यकी अपेक्षा वहुत कम है । इसलिये पहले अजीवद्रव्यका कथन किया जाता है ।

उस अचेतनत्वलक्षणविशिष्ट अजीवके पांच भेद हैं । १ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म, ४ आकाश और ५ काल । इन पांचोंमें जीव मिलानेसे द्रव्यके छह भेद होते हैं । इन छहों द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल क्रियासहित हैं और शेष चार द्रव्य क्रियारहित हैं । तथा जीव और पुद्गलके स्वभावपर्याय और विभावपर्याय दोनों होती हैं । और शेष चार द्रव्योंके केवल स्वभावपर्याय होती हैं, विभावपर्याय नहीं होती । जिनमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण होंय, उनको पुद्गल कहते हैं । गतिपरिणत जीव और पुद्गलको जो गमनमें सहकारी है उसको धर्मद्रव्य कहते हैं । जैसे जल मछलीके गमनमें सहकारी है । गतिपूर्वक स्थितिपरिणत जीव और पुद्गलको जो

स्थितिमें सहकारी है उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं, जैसे गमन करते हुए पथिकोंको स्थित होनेमें भूमि । ये धर्म और अधर्म द्रव्य गति-पूर्वक स्थितिपरिणत जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन कारण हैं, प्रेरक कारण नहीं हैं । भावार्थ—जैसे मछली यदि गमन करे, तो जल उसके गमनमें सहकारी है । किन्तु ठहरी हुई मछ-लियोंको जल जबरदस्तीसे गमन नहीं कराता है । अथवा गमन करता हुआ पथिक यदि ठहरै, तो पृथिवी उसके ठहरनेमें सहकारिणी है किन्तु गमन करते हुओंको जबरदस्तीसे नहीं ठहराती । इस ही प्रकार यदि जीव और पुद्गल स्वयं गमन करैं, अथवा गमन करते हुए ठहरें, तो धर्म और अधर्म द्रव्य उनकी गति और स्थितिमें उदासीन सहकारी कारण हैं । किन्तु ठहरे हुए जीव पुद्गलको धर्मद्रव्य बलात् (जबरन्) नहीं चलाता तथा गमन करते हुए जीव पुद्गलको अधर्म द्रव्य जबरन् नहीं ठहराता है । जो जीवादिक द्रव्योंको अवकाश देनेके योग्य होय, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं । इन छहों द्रव्योंमें आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है । शेष पांच द्रव्य सर्व-व्यापी नहीं हैं, किन्तु अल्प क्षेत्रमें रहनेवाले हैं । आकाशके बहु मध्यभागमें लोक है । भावार्थ—आकाशका कुछ थोड़ासा मध्यका भाग ऐसा है, जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य पाये जाते हैं, उतने आकाशको लोकाकाश और जो आकाश केवल आकाशरूप है, अर्थात् उसमें जीवादिक द्रव्य नहीं हैं, उस आकाशको अलोकाकाश कहते हैं । भावार्थ—यद्यपि आकाश अखंड और एक द्रव्य है, तथापि जीवादिक अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे जितने आकाशमें जीवादिक पांच द्रव्य हैं, उतने आकाशको लोकाकाश कहते हैं । और शेष आकाशको अलोकाकाश कहते हैं । जो

कंठतालु आदिक स्थानोंसे अक्षररूप होकर नहीं निकलती है, किन्तु सर्वांगसे ध्वनिस्वरूप उत्पन्न होकर पश्चात् अक्षररूप होती है, इस लिये अनक्षरात्मक है। इस भाषात्मक शब्दके समस्त ही भेद परके प्रयोगसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये प्रायोगिक हैं। अभाषात्मक शब्दके दो भेद हैं एक प्रायोगिक दूसरा स्वाभाविक। जो मेघादिकसे उत्पन्न होय, उसे स्वाभाविक कहते हैं, और जो दूसरेके प्रयोगसे होय उसको प्रायोगिक कहते हैं। प्रायोगिकके चार भेद हैं, १ तत, २ वितत, ३ घन और ४ शौषिर। चर्मके विस्तृत करनेसे मढ़े हुए ढोल, नगाड़ा, मृदंगादिकसे उत्पन्न हुए शब्दको तत कहते हैं, सितार तमूरा आदिक तारके बाजोंसे उत्पन्न हुए शब्दको वितत कहते हैं, ताल, घंटा आदिकसे उत्पन्न हुए शब्दको घन कहते हैं, और बांसुरी शंखादिक, फूंकसे बजनेवाले बाजोंसे उत्पन्न हुए शब्दको शौषिर कहते हैं। कितने ही मतावलम्बी शब्दको अमूर्त आकाशका गुण मानते हैं, सो ठीक नहीं है। जो पदार्थ मूर्त्तमान् इन्द्रियसे ग्रहण होता है, वह अमूर्त नहीं किन्तु मूर्त ही है। क्योंकि इन्द्रियोंका विषय अमूर्त पदार्थ नहीं है। इसलिये श्रोत्रइन्द्रियका विषय होनेसे शब्द मूर्त है। (शंका) जो शब्द मूर्त है, तो दूसरे घटपटादिक पदार्थोंकी तरह बार बार उसका ग्रहण क्यों नहीं होता? (समाधान) जैसे बिजलीका एकबार नेत्र इन्द्रियसे ग्रहण होकर चारोंतरफ फैल जानेसे बार बार उसका ग्रहण नहीं होता, इस ही प्रकार शब्दका भी श्रोत्रइन्द्रियद्वारा एकबार ग्रहण होकर चारोंतरफ फैल जानेसे बार बार उसका ग्रहण नहीं होता। (शंका) जो शब्द मूर्त है, तो नेत्रादिक इन्द्रियोंसे भी उसका ग्रहण क्यों नहीं होता? (समाधान) प्रत्येक इन्द्रियका विषय नियमित होनेसे, जैसे रसा-

दिकका ग्रहण घ्राणादिक इन्द्रियोंसे नहीं होता, उस ही प्रकार श्रोत्र इन्द्रियके विषयभूत शब्दका भी नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं होता है । अथवा जो शब्द अमूर्त होता, तो मूर्तिमान् पवनकी प्रेरणासे श्रोताके कानोंतक नहीं पहुंचता तथा मूर्तिमान् चुने पत्थरकी दीवारोंसे नहीं रुकता ।

बन्धके भी दो भेद हैं, एक स्वाभाविक और दूसरा प्रायोगिक । स्वाभाविक (पुरुष प्रयोग अनपेक्षित) बन्ध दो प्रकार हैं एक सादि और दूसरा अनादि । स्निग्धरूक्ष गुणके निमित्तसे बिजली मेघ इन्द्रधनुष आदिक स्वाभाविक सादिबन्ध हैं । अनादिस्वाभाविकबन्ध धर्म अधर्म और आकाश द्रव्योंमें एक एकके तीन तीन भेद होनेसे नौ प्रकारका है, १ धर्मास्तिकाय बन्ध, २ धर्मास्तिकाय देशबन्ध, ३ धर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ४ अधर्मास्तिकाय बन्ध, ५ अधर्मास्तिकाय देशबन्ध, ६ अधर्मास्तिकाय प्रदेशबन्ध, ७ आकाशास्तिकाय बन्ध, ८ आकाशास्तिकाय देशबन्ध और ९, आकाशास्तिकाय प्रदेशबन्ध । जहां सम्पूर्ण धर्मास्तिकायकी विवक्षा है, वहां धर्मास्तिकायबन्ध कहते हैं । आधेको देश और चौथाईको प्रदेश कहते हैं । इस ही प्रकार अधर्म और आकाशमें समझना चाहिये । कालाणु भी समस्त एक दूसरेसे संयोगरूप हो रहे हैं और इस संयोगका कभी वियोग नहीं होता, सो यह भी अनादि संयोगकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है । एक जीवके प्रदेशोंके संकोचविस्तार स्वभाव होने पर भी परस्पर वियोग न होनेसे अनादिबन्ध है । नाना जीवोंके भी सामान्य अपेक्षासे दूसरे द्रव्योंके साथ अनादिबन्ध है । पुद्गलद्रव्यमें भी महास्कन्धादिके सामान्यकी अपेक्षासे अनादिबन्ध है । इस प्रकार यद्यपि समस्त द्रव्योंमें बन्ध है, तथापि यहां प्रकरणके वशसे पुद्गलका बन्धः

ग्रहण करना चाहिये । जो पुरुषके प्रयोगसे होय, उसको प्रायोगिक बन्ध कहते हैं । वह प्रायोगिक बन्ध दो प्रकारका है एक पुद्गलविषयिक दूसरा जीवपुद्गलविषयिक । पुद्गलविषयिक लाक्षाकाष्टादिक हैं, और जीवपुद्गलविषयिकके दो भेद हैं एक कर्मबन्ध और दूसरा नोकर्मबन्ध । भावार्थ--पुद्गलके दो भेद हैं, एक अणु और दूसरा स्कन्ध । स्कन्धके यद्यपि अनन्त भेद हैं तथापि संक्षपसे बावीस भेद हैं और एक भेद अणुका, इस प्रकार पुद्गलके सब मिलकर तेवीस भेद हैं । इनहीको तेवीस वर्गणा कहते हैं । यद्यपि ये समस्त वर्गणा पुद्गलकी ही है, तथापि इनमें परमाणुओंमेंसे अठारह वर्गणाओंका जीवसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, और पांच वर्गणाओंको जीव ग्रहण करते हैं । उन पांच वर्गणाओंके नाम इस प्रकार हैं; १ आहारवर्गणा, २ तैजसवर्गणा, ३ भाषावर्गणा, ४ मनोवर्गणा और ५ कार्माणवर्गणा । आहारवर्गणासे औदारिक (मनुष्य और तिर्यंचोंका शरीर), वैक्रियिक (देव और नारकियोंका शरीर) और आहारक (छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके शंकानिवारणार्थ केवलीके निकट जानेवाला सूक्ष्म शरीर) ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास बनते हैं, तैजस वर्गणासे तैजसशरीर (मृतक और जीवित शरीरमें जो कान्तिका भेद है, वह तैजसशरीरकृत है । मृत्यु होनेपर तैजसशरीर जीवके साथ चला जाता है) बनता है, भाषावर्गणासे शब्द बनते हैं, मनोवर्गणासे द्रव्यमन बनता है जिसके द्वारा यह जीव हित अहितका विचार करता है, और कार्माणवर्गणासे ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म (इनका विशेष स्वरूप आगे लिखा जायगा) बनते हैं । जिनके निमित्तसे यह जीव चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख पाता है और जिनका क्षय होनेसे यह जीव

दिक गुणोंका उत्पाद और व्यय होता है, इसलिये परमाणु कथंचित् अनित्य भी हैं। तथा द्व्यणुक आदिककी तरह संघातरूप कार्यके अभावसे परमाणु कारणस्वरूप भी है और द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे परमाणुकी न कभी उत्पत्ति होती है और न कभी नाश होता है इसलिये कथंचित् नित्य भी है। निरवयव होनेसे परमाणुसे एकरस, एकवर्ण और एकगन्ध है। जो सावयव होते हैं, उनके ही अनेक रस आदिक होते हैं। जैसे आम्रादिकके अनेक रस मयूरादिकके अनेक वर्ण और अनुलेपादिकके अनेक गन्ध हैं। एकप्रदेशी परमाणुके अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। अर्थात् शीत और उष्ण इन दोमेंसे एक तथा स्निग्ध और रूक्ष इन दोमेंसे एक, इस प्रकार दो अविरुद्ध स्पर्श होते हैं। एकप्रदेशी परमाणुके परस्परविरुद्ध शीत और उष्ण तथा स्निग्ध और रूक्ष दोनों युगपत् नहीं हो सकते, दोनोंमेंसे एक एक ही होता है। गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्श परमाणुओंमें नहीं, किन्तु स्कन्धोंमें होते हैं। यद्यपि परमाणु, इन्द्रियोंके गोचर (विषय) नहीं हैं, तथापि घट, पट, शरीरादिक कार्यके देखनेसे कारणरूप परमाणुओंके अस्तित्वका अनुमान होता है। क्योंकि कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। परमाणु कारणादि अनेक विकल्परूप अनेकान्तात्मक है। भावार्थ—परमाणु द्व्यणुक आदिक स्कन्धोंकी उत्पत्तिका निमित्त है इसलिये कथंचित् कारण है, स्कन्धोंके भेद (खंड) होनेसे उत्पन्न होता है, इसलिये कथंचित् कार्य है, स्कन्धोंका विभाग होते होते परमाणु होता है, और परमाणुका पुनः विभाग नहीं होता इसलिये कथंचित् अन्त्य है, स्पर्शादिक गुणोंका समुदाय है, सो ही परमाणु है इसलिये एक परमाणु स्पर्शादिक अनेक भेदस्वरूप है इसलिये कथंचित् अन्त्य नहीं है,

सूक्ष्मपरिणामरूप होनेसे कथंचित् सूक्ष्म है, स्थूल स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण होनेसे कथंचित् स्थूल है, द्रव्यपनेका कभी नाश नहीं होता इसलिये कथंचित् नित्य है, स्निग्धादिकका परिणमन होता रहता है इसलिये कथंचित् अनित्य है, एकप्रदेशपर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् एक रस गंध वर्ण और द्विस्पर्श रूप है, अनेकप्रदेशरूप स्कन्ध परिणामशक्ति सहित होनेसे कथंचित् अनेक रसादि रूप है, कार्यलिंगसे अनुमीयमान होनेकी अपेक्षासे कथंचित् कार्यलिङ्ग है और प्रत्यक्षज्ञानविषयत्वपर्यायकी अपेक्षासे कथंचित् कार्यलिङ्ग नहीं है। इस प्रकार परमाणु अनेकधर्मस्वरूप है। प्राचीन सिद्धान्तकारोंने भी कहा है—

> कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
> एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥

अब आगे स्कन्धका वर्णन करते हैं—

बन्धपरिणामको प्राप्त हुए परमाणुओंको स्कन्ध कहते हैं। स्कन्धके यद्यपि अनन्त भेद हैं, तथापि संक्षेपसे तीन भेद हैं। १ स्कन्ध, २ स्कन्धदेश और ३ स्कन्धप्रदेश। भावार्थ—अनन्तानन्त परमाणुओंका महास्कन्ध उत्कृष्ट स्कन्ध है। महास्कन्धमें जितने परमाणु हैं, उसके आधेमें एक जोड़नेसे जो संख्या हो उसको जघन्यस्कन्ध कहते हैं, बीचके स्कन्धोंको मध्यमस्कन्ध कहते हैं, महास्कन्धमें जितने परमाणु हैं, उनसे आधे परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्टस्कन्धदेश कहते हैं, महास्कन्धके परमाणुओंकी संख्यासे चौथाईमें एक मिलानेसे जितनी संख्या हो, उतने परमाणुओंके स्कन्धको जघन्यस्कन्धदेश कहते हैं, बीचके स्कन्धोंको मध्यमस्कन्धदेश कहते हैं।

महास्कन्धके परमाणुओंकी संख्यासे चौथाई परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्टस्कन्धप्रदेश कहते हैं, दो परमाणुओंके स्कन्धको जघन्यस्कन्धप्रदेश कहते हैं और वीचके स्कन्धको मध्यमस्कन्धप्रदेश कहते हैं। इस प्रकार स्कन्धके तीन भेद और एक परमाणु, सब मिलकर पुद्गलके चार भेद हुए। अथवा अन्य प्रकारसे पुद्गलद्रव्यके छह भेद कहे हैं। १ वादरवादर, २ वादर, ३ वादरसूक्ष्म, ४ सूक्ष्मवादर, ५ सूक्ष्म और ६ सूक्ष्मसूक्ष्म। जो पुद्गलपिंड दो खंड करनेपर अपने आप फिर नहीं मिलैं, ऐसे काष्टपाषाणादिकको वादरवादर कहते हैं। जो पुद्गलपिंड खंड खंड किये हुए अपने आप मिल जांय, ऐसे दुग्ध घृत तैलादिक पुद्गलोंको वादर कहते हैं। जो पुद्गलपिंड स्थूल होनेपर भी छेद भेद और ग्रहण करनेमें नहीं आवें, ऐसे धूप छाया चांदनी आदिक पुद्गलोंको वादरसूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म होनेपर भी स्थूलवत् प्रतिभासमान स्पर्शन--रसन--घ्राण और श्रोत्रइन्द्रियग्राह्य स्पर्श रस गन्ध और शव्द रूप पुद्गलोंको सूक्ष्मवादर कहते हैं। इन्द्रियोंके अगोचर कर्मवर्गणादिकस्कन्धोंको सूक्ष्म कहते हैं। परमाणुको सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं। कोई कोई आचार्योंने ये छह भेद स्कन्धोंके माने हैं। वे कर्मवर्गणासे नीचे द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्तके स्कन्धोंको सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं और परमाणुको भिन्नभेदमें ग्रहण करते हैं। उनके मतानुसार पुद्गलके सात भेद हैं। अथवा स्कन्धके पृथ्वी अप् तेज और वायु ये चार भेद हैं। इनमेंसे प्रत्येक भेद स्पर्श रस गन्ध और वर्ण इन चारों गुण संयुक्त है, तथा ये ही पृथ्वी आदिक ही शव्दादिकरूप परिणमैं हैं। कई महाशय पृथ्वी आदिक चारोंको भिन्न भिन्न पदार्थ मानते हैं और पार्थिवादिक परमाणुओंको भिन्न भिन्न जातिवाले मानते हैं, पृथ्वीके परमाणुओंको स्पर्श रस गन्ध और वर्ण

चारों गुणवाले, जलके परमाणुओंको गन्ध विना तीन गुणवाले, अग्निके परमाणुओंको वर्ण और स्पर्श दो गुणवाले और वायुके परमाणुओंको केवल स्पर्शगुणवाले मानते हैं, सो ठीक नहीं है। क्योंकि पृथ्वी आदिकके परमाणुओंका जलादिक परमाणुरूप परिणमन दीखता है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, काष्टादिक पृथ्वीरूप पुद्गल अग्निरूप होते दीखते हैं, स्वातिनक्षत्रमें सीपके मुखमें गिरी हुई जलकी बूंद मोती हो जाती है, ग्रहण किया हुआ आहार वात (पवन) पित्त (जठराग्नि) रूप होता है, मेघ जलरूप हो जाता है, जल बर्फ (पृथ्वी) रूप हो जाता है, दियासलाई (पृथ्वी) अग्निरूप हो जाती है। यदि कोई कहे कि, दियासलाईमें अग्निके परमाणु पहलेहीसे थे, सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि दियासलाईमें अग्निके लक्षण उष्ण स्पर्शका अभाव है। इत्यादि अनेक दोष आते हैं, इसलिये ये पृथ्वी आदिक भिन्नभिन्न द्रव्य नहीं हैं किन्तु एक पुद्गल द्रव्यके ही ये चारों पर्याय हैं। पृथ्वीमें चारों गुणोंकी मुख्यता है, जलमें गन्धकी गौणता है, अग्निमें गन्ध और रसकी गौणता है और वायुमें स्पर्शकी मुख्यता और शेष तीनकी गौणता है। ये चारों ही गुण परस्पर अविनाभावी हैं। जहां एक है वहां चारों हैं। ये स्कन्ध पुद्गलत्वकी अपेक्षासे यद्यपि अनादि हैं, तथापि उत्पत्तिकी अपेक्षासे आदिमान् हैं। अब आगे स्कन्धोंकी उत्पत्तिके कारणका निरूपण करते हैं—

भेद (खंड होना) संघात (मिलना) और दोनोंसे (भेद संघातसे) स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है। भावार्थ—दो परमाणुओंके मिलनेसे द्व्यणुकस्कन्ध होता है, द्व्यणुकस्कन्ध और एक परमाणुके मिलनेसे त्र्यणुकस्कन्ध होता है, दो द्व्यणुकस्कन्ध अथवा एक त्र्यणु-

द्रव्योंमेंसे पुद्गलद्रव्यका कथन समाप्त हो चुका, आकाश काल और जीवका कथन आगे किया जावेगा। धर्म और अधर्म द्रव्यका निरूपण इस अधिकारमें किया जाता है।

संसारमें धर्म और अधर्म शब्दसे पुण्य और पाप समझे जाते हैं। परन्तु यहांपर वह अर्थ नहीं है। यहां धर्म और अधर्म शब्द द्रव्यवाचक हैं, गुणवाचक नहीं हैं। पुण्य और पाप आत्माके परिणाम विशेष हैं, अथवा "जो जीवोंको संसारके दुःखसे छुड़ाकर मोक्ष सुखमें धारण करता है, सो धर्म है और इससे विपरीत अधर्म है" यह अर्थ भी यहांपर नहीं समझ लेना चाहिये। क्योंकि ये भी जीवके परिणाम विशेष हैं। यहांपर धर्म और अधर्म शब्द दो अचेतन द्रव्योंके वाचक हैं। ये दोनों ही द्रव्य तिलमें तेलकी तरह समस्त लोकमें व्यापक हैं। धर्म द्रव्यका स्वरूप श्रीमत्कुन्दकुन्दस्वामीने इस प्रकार कहा है:—

गाथा।

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं।
लोगोगाढं पुट्ठं पिदुलमसंखादि य पदेसं ॥ १ ॥
अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहि परिणदं णिच्चं।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ २ ॥
उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ३ ॥

अर्थात्—धर्मास्तिकाय स्पर्श रस गन्ध वर्ण और शब्दसे रहित है, अतएव अमूर्त्त है, सकल लोकाकाशमें व्याप्त है, अखंड, विस्तृत और असंख्यात प्रदेशी है। षट्स्थानपतितवृद्धिहानि (इसका स्वरूप

इस ही अधिकारके अन्तमें कहा जावेगा, वहांसे जानना) द्वारा अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेदोंकी हीनाधिकतासे उत्पादव्ययस्वरूप है । अपने स्वरूपसे च्युत न होनेसे नित्य है, गतिक्रिया–परिणत जीव और पुद्गलको उदासीन सहाय मात्र होनेसे कारणभूत है। आप किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है, इसलिये अकार्य है । जैसे जल स्वयं गमन न करता हुआ तथा दूसरोंको गतिरूप परिणमानेमें प्रेरक न होता हुआ, अपने आप गमनरूप परिणमते हुए मत्स्यादिक (मछलीवगैरह) जलचर जीवोंको उदासीन सहकारीकारण मात्र है, उस ही प्रकार धर्मद्रव्य भी स्वयं गमन नहीं करता हुआ तथा परको गतिरूप परिणमानेमें प्रेरक न होता हुआ स्वयमेव गतिरूप परिणमे जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारीकारण मात्र है। अर्थात् जीव और पुद्गलद्रव्य परगति–सहकारित्व–रूप धर्मद्रव्यका उपकार है ।

जिस प्रकार धर्मद्रव्य गतिसहकारी है, उस ही प्रकार अधर्मद्रव्य स्थितिसहकारी है । भावार्थ–जैसे पृथ्वी स्वयं पहलेहीसे स्थित रूप है, तथा परकी स्थितिमें प्रेरकरूप नहीं है । किन्तु स्वयं स्थितिरूप परिणमते हुए अश्वादिकों (घोडे वगैरह) को उदासीन अविनाभूत सहकारी कारण मात्र है, उस ही प्रकार अधर्मद्रव्य भी स्वयं पहलेहीसे स्थितिरूप परके स्थितिपरिणाममें प्रेरक न होता हुआ स्वयमेव स्थितिरूप परिणमें जीव और पुद्गलोंको उदासीन अविनाभूत सहकारी कारण मात्र है । अर्थात् जीव और पुद्गल द्रव्य पर-स्थिति-सहकारित्वरूप अधर्मद्रव्यका उपकार है ।

जिस प्रकार गतिपरिणामयुक्त पवन, ध्वजाके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता है, उस प्रकार धर्मद्रव्यमें गति-हेतुत्व नहीं है । क्योंकि

धर्मद्रव्य निष्क्रिय होनेसे कदापि गतिरूप नहीं परिणमता है, और जो स्वयं गतिरहित है, वह दूसरेके गतिपरिणामका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता, किन्तु जीव मछलियोंको जलकी तरह पुद्गलके गमनमें उदासीन सहकारीकारण मात्र है । अथवा जैसे गतिपूर्वक स्थिति–परिणत तुरंग, असवारके स्थिति परिणामका हेतु कर्त्ता है, उस प्रकार अधर्म द्रव्य नहीं है । क्योंकि अधर्म द्रव्य निष्क्रिय होनेसे कदापि गतिपूर्वक स्थितिरूप नहीं परिणमता है, और जो स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप नहीं है, वह दूसरेकी गतिपूर्वक स्थितिका हेतुकर्त्ता नहीं हो सकता । किन्तु जीव घोड़ेको पृथ्वीकी तरह पुद्गलकी गतिपूर्वक स्थितिमें उदासीन सहकारी कारण मात्र है । यदि धर्म और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें हेतुकर्त्ता न होते, तो जिनके गति है, उनके गति ही रहती स्थिति नहीं होती और जिनके स्थिति है उनके स्थिति ही रहती गति नहीं होती । किन्तु एक ही पदार्थके गति और स्थिति दोनों दीखती हैं, इससे सिद्ध होता है कि, धर्म और अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी गतिस्थितिमें हेतु-कर्त्ता नहीं हैं, किन्तु अपने स्वभावसे ही गतिस्थितिरूप परिणमें हुए जीव पुद्गलोंको उदासीन सहकारिकारण मात्र है ।

(शंका)–धर्म और अधर्म द्रव्यके सद्भावमें क्या प्रमाण है ?

(समाधान)–आगम और अनुमानप्रमाणसे धर्म और अधर्म द्रव्यका सद्भाव सिद्ध होता है । "**अजीवकायाधर्माधर्माकाश-पुद्गलाः**" यह धर्म और अधर्मद्रव्यके सद्भावमें आगमप्रमाण है और अनुमानप्रमाणसे उनकी सिद्धि इस प्रकारसे होती है–अनु-मानका लक्षण पहले कह आए हैं कि, साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं । जो पदार्थ सिद्ध करना है, उसको साध्य कहते

हैं, और साध्यके विना जिसका सद्भाव नहीं हो उसको साधन कहते हैं। साध्य साधनके इस अविनाभावसंबंधको व्याप्ति कहते हैं। संसारमें कारणके विना कोई भी कार्य नहीं होता है, इसलिये कार्यकी कारणके साथ व्याप्ति है अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान होता है। कारणके दो भेद हैं, एक उपादान क़ारण, दूसरा निमित्त कारण। जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमता है, उसको उपादान कारण कहते हैं। जैसे घटका उपादान कारण मृत्तिका (मिट्टी) है। और जो पदार्थ स्वयं तो कार्यरूप नहीं परिणमता है, किन्तु उपादनकारणके कार्यरूप परिणमनमें सहकारी होता है, उनको निमित्तकारण कहते हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिमें दण्डचक्रकुंभकारादि। निमित्तकारणके दो भेद हैं, एक प्रेरकनिमित्तकारण और दूसरा उदासीननिमित्तकारण। प्रेरकनिमित्तकारण उसको कहते हैं, जो प्रेरणापूर्वक परको परिणमावै। जैसे कुंभक़ारके चक्रके भ्रमणरूप कार्यमें दंड और कुंभकार प्रेरकनिमित्तकारण हैं। जो परको प्रेरणा तो करता नहीं है और उसके परिणमनमें उदासीनतासे सहकारी होता है, उसको उदासीननिमित्तकारण कहते हैं। जैसे चक्रके भ्रमणरूप कार्यमें कीली (जिसके ऊपर रक्खा हुआ चक्र भ्रमण करता है) जो चक्र भ्रमण करै, तो कीली सहकारिणी है, स्वयं दण्डकी तरह चक्रको नहीं घुमाती है। किन्तु विना कीलीके चक्र नहीं घूम सकता। इसहीलिये कीली चक्रके भ्रमणमें कारण है। संसारमें एक कार्यकी सिद्धि एक कारणसे नहीं होती है, किन्तु कारणकलापकी (समूहकी) एकत्रतासे (सिद्धि) होती है। जैसे दीपकरूप कार्यकी उत्पत्तिमें तेल, वत्ती, दियासलाई आदि अनेक कारण हैं। ये तेल वत्ती आदिक जुदे जुदे दीपकरूप कार्यके

उत्पादनमें समर्थ नहीं हैं, किन्तु इन सब कारणोंकी एकत्रता ही दीपकरूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ है । भावार्थ–कारणके दो भेद हैं, एक असमर्थ कारण और दूसरा समर्थ कारण । कार्यकी उत्पत्तिमें सहकारी अनेक पदार्थोंमेंसे जुदा जुदा प्रत्येक पदार्थ असमर्थ कारण है । जैसे दीपककी उत्पत्तिमें तेल वत्ती आदिक जुदे जुदे असमर्थ कारण है । प्रतिबन्धक (बाधक) का अभाव होनेपर सहकारी समस्त सामग्रीकी एकत्रताको समर्थकारण कहते हैं । जैसे दीपककी उत्पत्तिमें तेल वत्ती आदिक समस्त सामग्रीकी एकत्रता और प्रतिवन्धक पवनका अभाव समर्थ कारण है । तेल वत्ती आदिक समस्त सहकारी सामग्रीका सद्भाव होनेपर भी दीपकके प्रतिबन्धक पवनका जबतक निरोध नहीं होगा, तबतक दीपकरूप कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती इसलिये कार्यकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धके अभावको भी कारणता है । यहांपर कहनेका अभिप्राय यह है कि, किसी एक कार्यकी उत्पत्ति किसी एक कारणसे ही नहीं होती है, किन्तु एक कार्यकी उत्पत्तिमें अनेक कारणोंकी आवश्यकता होती है । गति और गतिपूर्वक स्थिति ये दो कार्य जीव और पुद्गल इन दो ही द्रव्योंमें होते हैं अन्यमें नहीं होते हैं । जीव और पुद्गलके गति और गतिपूर्वक स्थितिरूप कार्य अनेक कारणजन्य हैं । उनमें जीव और पुद्गल तो उपादानकारण हैं और धर्म और अधर्मद्रव्य निमित्तकारण हैं । बस जीव और पुद्गलके गति और गतिपूर्वक स्थितिरूप कार्यसे धर्म और अधर्मद्रव्यरूप निमित्तकारणका अनुमान होता है । यद्यपि मछली आदिककी गतिमें जलादिक और अश्वादिककी गतिपूर्वक स्थितिमें पृथ्वी आदिक निमित्तकारण हैं, तथापि पक्षियोंके गगनागमनादिक कार्योंमें निमित्तकारणका अभाव

६ अनंतगुणवृद्धि । तथा इसही प्रकार १ अनन्तभागहानि, २ असंख्यातभागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४ संख्यातगुणहानि, ५ असंख्यातगुणहानि और ६ अनंतगुणहानि । इसही कारण इसका षट्स्थानपतितहानिवृद्धि है । इस षट्स्थानपतितहानिवृद्धिमें अनंतका प्रमाण समस्त जीवराशिके समान है, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक (लोकाकाशके प्रदेशोंसे असंख्यातगुणित) के समान और संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातके समान है । किसी विवक्षित गुणके किसी विवक्षितसमयमें जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनमें अनंतका भाग देनेसे जो लब्धि आवै, उसको अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें मिलानेसे अनंतभागवृद्धिरूप स्थान होता है । जैसे अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण २५६ हो, और अनंतका प्रमाण १६ हो, तो अनंत १६ का भाग अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाण २५६ में देनेसे लब्ध १६ को २५६ में मिलानेसे २७२ अनंतभागवृद्धिका स्थान होता है । इसही प्रकार असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागवृद्धिका स्वरूप जानना चाहिये । अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणको संख्यातसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हो, उसको संख्यातगुणवृद्धि कहते हैं । जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ को संख्यातके प्रमाण ४ से गुणा करनेसे १०२४ संख्यातगुणवृद्धिका स्थान होता है । इसही प्रकार असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिका स्वरूप जानना चाहिये । अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें अनंतका भाग देनेसे जो लब्धि आवै, उसको अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमेंसे घटानेसे जो शेष रहै, उसको अनंतभागहानिका स्थान कहते हैं । जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ में अनंतके प्रमाण १६ का भाग देनेसे १६ पाये, सो १६ को २५६ मेंसे घटानेसे २४० रहे ।

इसही प्रकार असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिका स्वरूप जानना चाहिये। अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें संख्यातका भाग देनेसे जो लब्धि आवे, उसको संख्यातगुणहानि कहते हैं। जैसे अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाण २५६ में संख्यातके प्रमाण ४ का भाग देनेसे ६४ पाये, इसही प्रकार असंख्यातगुणहानि और अनन्तगुणहानिका स्वरूप जानना। इस षट्स्थानपतितहानिवृद्धिका खुलासा अभिप्राय यह है कि, जब किसी गुणमें वृद्धि या हानि होती है, तो एक या दो अविभागप्रतिच्छेदोंकी वृद्धि या हानि नहीं होती, किन्तु वृद्धि और हानिके उपर्युक्त छह छह स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानरूप वृद्धि या हानि होती है।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें धर्मअधर्मनिरूपणनामक पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

छट्ठा अधिकार।

आकाशद्रव्यनिरूपण।

जो जीवादिक समस्त द्रव्योंको युगपत् अवकाश दान देता है, उसको आकाशद्रव्य कहते हैं। यह आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अखंडित एकद्रव्य है। यद्यपि समस्त ही सूक्ष्मद्रव्य परस्पर एक दूसरेको अवकाश देते हैं, परन्तु आकाशद्रव्य समस्तद्रव्योंको युगपत् अवकाश देता है, इस कारण लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष नहीं आता है। यदि कोई कहै कि, यह अवकाश–दातृत्व–धर्म लोकाकाशमें ही है, अलोकाकाशमें नहीं है। क्योंकि अलोकाकाशमें कोई दूसरा द्रव्यही नहीं है। इस कारण आकाशके लक्षणमें अव्याप्तिदोष आता है। सो भी ठीक

नहीं है । क्योंकि जैसे जलमें यह शक्ति है कि, हंस जलमें आवै तो उसे अवकाश देवें, परन्तु किसी जलमें यदि हंस आकर प्रवेश न करै, तो उस हंसके अभावमें जलकी अवकाश देनेकी शक्तिका अभाव नहीं हो जाता है । इसी प्रकार अलोकाकाशमें यदि अन्य द्रव्य नहीं हैं, तो अन्यद्रव्योंके अभाव होनेसे आकाशकी अवकाश-दातृत्वशक्तिका अभाव नहीं हो सकता । यह आकाशका स्वभाव है और स्वभावका कभी अभाव नहीं होता । इसलिये लक्षणमें अव्याप्तिदोष नहीं है । तथा असंभवदोषका भी संभव नहीं है । इसलिये उक्त लक्षण त्रिदोषवर्जित समीचीन है ।

(शंका)—आकाशके सद्भावमें क्या प्रमाण है ?

(समाधान)—जितने शब्द होते हैं, उनका कुछ न कुछ वाच्य अवश्य होता है आकाश भी एक शब्द है, इसलिये इस आकाश शब्दका जो वाच्य है, वही आकाशद्रव्य है ।

(शंका)—खरविषाण (गधेके सींग) भी शब्द है, तो इसका भी कोई वाच्य अवश्य होगा ।

(समाधान)—खरविषाण कोई शब्द नहीं है, किन्तु एक शब्द खर है और दूसरा शब्द विषाण है । इसलिये खरका भी वाच्य है । परन्तु खरविषाण समासान्त पदका कोई वाच्य नहीं है । अथवा यदि कोई खर (गधा) मरकर बैल होवे, तो भूतनैगमनयकी अपेक्षासे उस बैलको खर कह सकते हैं । और विषाण उसके हैं ही, इसलिये कथंचित् खरविषाणका भी वाच्य है ।

(शंका)—आकाश कोई द्रव्य नहीं है क्योंकि आकाशमें द्रव्यका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य घटित नहीं होता ।

(समाधान)—आकाशद्रव्य सदा विद्यमान है । इसलिये ध्रौव्यमें तो कोई शंका ही नहीं है, रहा उत्पाद और व्यय सो इस प्रकार है कि, समस्त द्रव्योंमें उत्पाद और व्यय दो प्रकारसे होते हैं, १ स्वप्रत्यय और २ परप्रत्यय । समस्त द्रव्योंमें अपने अपने अगुरुलघुगुणके षट्स्थानपतितहानिवृद्धिद्वारा परिणमनको स्वप्रत्ययउत्पाद-व्यय कहते हैं । भावार्थ—प्रत्येक द्रव्यमें अपने अपने अगुरुलघुगुणकी पूर्व अवस्थाके त्यागको व्यय कहते हैं और नवीन अवस्थाकी प्राप्तिको उत्पाद कहते हैं। इन व्यय और उत्पादमें किसी दूसरे पदार्थकी अपेक्षा नहीं है, इसलिये इनको स्वप्रत्यय (स्वनिमित्तक) कहते हैं। जीव और पुद्गलद्रव्यमें अनेक प्रकार विभाव व्यञ्जनपर्याय होते रहते हैं। प्रथम समयमें किसी एक पर्यायरूपपरिणत जीव अथवा पुद्गलद्रव्यको आकाशद्रव्य अवकाश देता था, किन्तु दूसरे समयमें वही आकाशद्रव्य किसी दूसरी पर्यायरूपपरिणत उस ही जीव अथवा पुद्गलको अवकाश देता है । जब अवकाशयोग्य पदार्थ एक स्वरूप न रहकर अनेकरूप होता रहता है, तो आकाशकी अवकाशदातृत्वशक्तिमें भी अनेकरूपता स्वयंसिद्ध है। यह अनेकरूपता जीव और पुद्गलके निमित्तसे होती है, इसलिये इसको परप्रत्यय कहते हैं। भावार्थ—अनेक पर्यायरूपपरिणत जीव और पुद्गलको अवकाश देनेवाले आकाशद्रव्यकी आकाशदातृत्वशक्तिकी पूर्व अवस्थाके त्यागको परप्रत्ययव्यय कहते हैं और नवीन अवस्थाकी प्राप्तिको परप्रत्ययउत्पाद कहते हैं। इसही प्रकार धर्म अधर्म काल और शुद्ध जीवमें भी स्वप्रत्यय और परप्रत्यय उत्पादव्यय घटित कर लेना चाहिये। भावार्थ—समस्त द्रव्योंमें अगुरुलघुगुणके परिणमनसे स्वप्रत्ययउत्पाद-व्यय होते हैं और अनेक प्रकार गतिरूप-परिणत

जीव और पुद्गल द्रव्यको गमनमें सहकारी धर्मद्रव्यके गतिसहकारित्व गुणमें अनेक प्रकार स्थितिरूपपरिणत जीव और पुद्गल द्रव्यको स्थितिमें सहकारी अधर्मद्रव्यके स्थितिसहकारित्व गुणमें, अनेक प्रकार पर्यायरूपपरिणत जीव और पुद्गलादिको परिणमनसहायी काल द्रव्यके वर्त्तनागुणमें, और अनेक अवस्थारूपपरिणत जीव और पुद्गलादि द्रव्योंके जाननेवाले शुद्धजीवके केवलज्ञानगुणमें परप्रत्यय उत्पाद और व्यय होते हैं।

(शंका)—शुद्ध जीवके केवलज्ञान गुणमें उत्पादव्यय संभव नहीं होते। क्योंकि केवलज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंको युगपत् जानता है। इसलिये जो उसने पहले जाना है। उसको ही पीछे जानता है।

(समाधान)—ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि यद्यपि केवलज्ञान समस्त पदार्थोंकी त्रिकालवर्ती पर्यायोंको युगपत् जानता है, तथापि प्रथम समयमें जिस पदार्थकी वर्त्तमान पर्यायको वर्तमान पर्यायरूप जानता है और आगामी पर्यायको आगामीरूप जानता है, द्वितीय समयमें उस ही पदार्थकी जिस पर्यायको प्रथम समयमें वर्तमान-पर्यायरूप जाना था, उसको उस दूसरे समयमें भूतपर्यायरूप जानता है, तथा जिस पर्यायको प्रथम समयमें आगामी पर्यायरूप जाना था, उस पर्यायको इस दूसरे समयमें वर्त्तमान पर्यायरूप जानता है। इसलिये केवलज्ञानमें उत्पादव्यय अच्छी तरह घटित होते हैं।

यह आकाशद्रव्य यद्यपि निश्चयनयकी अपेक्षासे अखंडित एक द्रव्य है, तथापि व्यवहारनयकी अपेक्षासे इसके दो भेद हैं। १ लोकाकाश, और २ अलोकाकाश। भावार्थः—सर्वव्यापी अनंत अलोकाकाशके बिलकुल बीचमें कुछ भागमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और

अधोलोक ।

नीचेसे लगाकर मेरुकी जड़ पर्यन्त सात राजू ऊंचा अधोलोक है। जिस पृथ्वीपर अस्मदादिक निवास करते हैं, उस पृथ्वीका नाम चित्रा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक हजार योजन है और यह पृथ्वी मध्यलोकमें गिनी जाती है। सुमेरु पर्वतकी जड़ एक हजार योजन चित्रा पृथ्वीके भीतर है तथा निन्यानवै हजार योजन चित्रा पृथ्वीके ऊपर है और चालीस योजनकी चूलिका है। सब मिलकर एक लाख चालीस योजन ऊंचा मध्यलोक है। मेरुकी जड़के नीचेसे अधोलोकका प्रारंभ है। सबसे प्रथम मेरुपर्वतकी आधारभूत रत्नप्रभा पृथ्वी है। पृथ्वीका पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्तपर्यन्त विस्तार है, और इसही प्रकार शेष छह पृथ्वियोंका भी पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओंमें लोकके अन्तपर्यन्त विस्तार है मोटाईका प्रमाण सबका भिन्न भिन्न है। रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटाई एक लाख ८० हजार योजन है। रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे पृथ्वीको आधारभूत घनोदधि घन और तनुवातवलय[1] हैं। तनुवातवलयके नीचे कुछ दूर तक केवल आकाश है। आगे चलकर शर्कराप्रभा-नामक दूसरी पृथ्वी है, जिसकी मोटाई बत्तीस हजार योजन है। मेरुकी जड़से शर्कराप्रभा पृथ्वीके अन्ततक एक राजू है, जिसमेंसे दोनों पृथिवियोंकी मोटाई दो लाख बारह हजार योजन घटानेसे दोनों पृथिवियोंका अन्तर निकलता है। शर्कराप्रभाके नीचे कुछ दूरतक केवल आकाश है, जिसके आगे अठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभा तीसरी पृथ्वी है। दूसरी पृथ्वीके अन्तसे तीसरी पृथ्वीके

---

१ इसही प्रकार शेष छह पृथिवियोंके नीचे भी बीस बीस हजार योजन मोटे तीन वातवलय समझना।

अन्ततक एक राजू है। इसही प्रकार आगेभी है। अर्थात् तीसरीके अंतसे चौथीके अंततक, चौथीके अंतसे पांचवींके अंततक, पांचवींके अंतसे छट्ठीके अंततक और छट्ठीके अन्तसे सातवींके अंततक एक एक राजू है। चौथी पंकप्रभा पृथ्वी २४००० योजन मोटी, पांचवीं धूमप्रभा २०००० योजन मोटी छट्ठी तमःप्रभा १६००० योजन मोटी और सातवीं महातमःप्रभा ८००० योजन मोटी है। सातवीं पृथ्वीके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश निगोदादिक जीवोंसे भरा हुआ है। वहां कोई पृथ्वी नहीं है। इन सातों पृथ्वियोंके क्रमसे घर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये भी अनादिप्रसिद्ध नाम हैं।

पहली रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं—१ खरभाग, २ पंकभाग और ३ अब्बहुलभाग। खरभागकी मोटाई १६००० योजन, पंकभागकी मोटाई ८४००० योजन और अब्बहुल भागकी मोटाई ८०००० योजन है।

जीवोंके दो भेद हैं, संसारी और मुक्त। जिनमेंसे मुक्तजीव लोकके शिखरपर निवास करते हैं और संसारी जीवोंका निवासक्षेत्र समस्त लोक है। संसारी जीवोंके चार भेद हैं—देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी। देवोंके चार भेद हैं—१ भवनवासी, २ व्यन्तर, ३ ज्योतिषी, और ४ वैमानिक। भवनवासियोंके दश भेद हैं—१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ विद्युत्कुमार, ४ सुपर्णकुमार, ५ अग्निकुमार, ६ वातकुमार, ७ स्तनितकुमार, ८ उदधिकुमार, ९ द्वीपकुमार और १० दिक्कुमार। व्यंतरोंके आठ भेद हैं—१ किन्नर, २ किंपुरुष, ३ महोरग, ४ गंधर्व ५, यक्ष, ६ राक्षस, ७ भूत, और ८ पिशाच। पहली पृथ्वीके खरभागमें असुरकुमारको छोड़कर

शेष नव प्रकारके भवनवासी देव तथा राक्षसभेदको छोड़कर शेष सप्त प्रकारके व्यन्तरदेव निवास करते हैं। पंकभागमें असुरकुमार और राक्षसोंके निवासस्थान हैं और अब्बहुलभाग तथा शेषकी छह पृथिवियोंमें नारकियोंका निवास है।

नारकियोंकी निवासरूप साते पृथिवियोंमें भूमिमें तलघरोंकी तहर ४९ पटल हैं। भावार्थः—पहली पृथ्वीके अब्बहुलभागमें १३, दूसरी पृथ्वीमें ११, तीसरी पृथ्वीमें ९, चौथीमें ७, पांचवींमें ५, छट्ठीमें ३, और सातवीं पृथ्वीमें एक पटल है। ये पटल इन भूमियोंके ऊपरनीचेके एक एक हजार योजन छोड़कर समान अंतरपर स्थित हैं। अब्बहुलभागके १३ पटलोंमें से पहले पटलका नाम सीमन्तक पटल है, इस सीमंतक पटलमें सबके मध्यमें मनुष्य लोकके समान ४५ लक्ष योजन चौड़ा गोल (कूपवत्) इन्द्रकबिल (नरक) है। चारों दिशाओंमें असंख्यात योजन चौड़े उनचास उनचास श्रेणिवद्धनरक हैं और चारों विदिशाओंमें अडतालीस अडतालीस असंख्यात योजन चौडे श्रेणीवद्ध नरक हैं और दिशा विदिशाओंके बीचमें प्रकीर्णक (फुटकर) नरक हैं। जिनमें कोई संख्यात योजन चौड़े हैं और कोई असंख्यात योजन चौडे हैं। प्रत्येक पटलके प्रतिश्रेणिवद्धनरकोंकी संख्यामें एक एक कमती होता जाता है। और अंतके उनचासवें पटलमें चारों दिशाओंमें एक एक श्रेणीवद्धनरक है तथा विदिशाओंमें एक भी श्रेणीवद्धनरक नहीं है और न कोई प्रकीर्णक नरक है। प्रथम पृथ्वीके अब्बहुल भागमें तीस लाख नरक हैं, दूसरी पृथ्वीमें पचीस लाख, तीसरी पृथ्वीमें पंद्रह लाख, चौथी पृथ्वीमें दश लाख, पांचवीं पृथ्वीमें तीन लाख, छट्टी पृथ्वीमें पांच कम एक लाख और सातवी पृथ्वीमें पांच नरक

हैं। सातों पृथिवियोंके इंद्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंका जोड़ चौरासी लाख है। इन ही नरकोंमें नारकी जीवोंका निवास है।

पहली पृथ्वीके पहले पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई तीन हाथ है, द्वितीयादिक पटलोंमें क्रमसे वृद्धि होकर पहली पृथ्वीके तेरहवें पटलमें सात धनुष और सवा तीन हाथकी ऊंचाई है। पहली पृथ्वीमें जो उत्कृष्ट उंचाई है, उससे किंचित् अधिक दूसरी पृथ्वीके नारकियोंकी जघन्य उंचाई है। इसही प्रकार द्वितीयादिक पृथिवियोंमें जो उत्कृष्ट उत्सेध (उंचाई) है, वही किंचित अधिक सहित तृतीयादिक पृथिवियोंमें जघन्य देहोत्सेध (शरीकी उंचाई) है। पहली पृथ्वीके अंतिम इन्द्रकमें जो उत्कृष्ट उत्सेध है, द्वितीय पृथ्वीके अंतिम इन्द्रकमें उससे दुगना उत्सेध है और इसही क्रमसे दुगना करते करते सातवीं पृथ्वीमें नारकियोंके शरीरकी उंचाई पांचसौ धनुष है। पहली पृथ्वीमें नारकियोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है, उत्कृष्ट आयु एक सागर है। प्रथमादिक पृथिवियोंसे जो उत्कृष्ट आयु है वही किंचित् अधिक सहित द्वितीयादिक पृथिवियोंमें जघन्य आयु है। द्वितीयादिक पृथिवियोंमें क्रमसे तीन, सात, दश, सत्रह, बावीस और तेतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है।

नारकी, मरण करके नरक और देवगतिमें नहीं उपजते, किंतु मनुष्य और तिर्यंच गतिमें ही उपजते हैं और इसही प्रकार मनुष्य और तिर्यंच ही मरकर नरकगतिमें उपजते हैं। देवगतिसे मरण करके कोई जीव नरकमें उत्पन्न नहीं होते। असंज्ञी पंचेन्द्री (मनरहित) जीव मरकर पहले नरक तक ही जाते हैं आगे नहीं जाते। सरीसृप जातिके जीव दूसरी पृथ्वी तक ही जाते हैं, पक्षी

तीसरे नरक तक ही जाते हैं, सर्प चौथे नरक तक ही जाते हैं, सिंह पांचवें नरक तक ही जाते हैं, स्त्री छट्टे नरक तक जाती है और कर्मभूमिके मनुष्य और मत्स्य सातवें नरक तक जाते हैं। भोगभूमिके जीव नरकोंको नहीं जाते किन्तु देवही होते हैं। यदि कोई जीव निरंतर नरकको जाय, तो पहले नरकमें आठवा बार तक, दूसरे नरकमें सातवार तक, तीसरे नरकमें छहवार तक, चौथे नरकमें पांचवार तक, पांचवें नरकमें चारवार तक, छट्टे नरकमें तीनवार तक, और सातवें नरकमें दोवार तक, निरंतर जा सकता है, अधिक बार नहीं सकता। किन्तु जो जीव सातवें नरकसे आया है, उसको सातवें अथवा किसी और नरकमें अवश्य जाना पडता है, ऐसा नियम है। सातवें नरकसे निकलकर मनुष्यगति नहीं पाता, किन्तु तिर्यंचगतिमें अव्रती ही उपजता है। छट्टे नरकसे निकले हुए जीव संयम (मुनिका चरित्र) धारण नहीं कर सकते। पांचवें नरकसे निकले हुए जीव मोक्षको नहीं जा सकते। चौथी पृथ्वीसे निकले हुये तीर्थंकर नहीं होते, किन्तु पहले दूसरे और तीसरे नरकसे निकले हुए तीर्थंकर हो सकते हैं। नरकसे निकले हुए जीव बलभद्र नारायण प्रतिनारायण और चक्रवर्ती नहीं होते।

पापके उदयसे यह जीव नरकगतिमें उपजता है, जहां कि नानाप्रकारके भयानक तीव्र दुःखोंको भोगता है। पहली चार पृथ्वी तथा पांचवींके तृतीयांश नरकोंमें (बिलोंमें) उष्णताकी तीव्रवेदना है तथा नीचेके नरकोंमें शीतकी तीव्रवेदना है। तीसरी पृथ्वीपर्यन्त असुरकुमार जातिके देव आकर नारकियोंको परस्पर लडाते हैं। नारकियोंका शरीर अनेक रोगोंसे सदा ग्रसित रहता है, और

परिणामोंमें नित्य क्रूरता बनी रहती है । नरकोंकी पृथ्वी महा दुर्गन्ध और अनेक उपद्रवसहित होती है, नारकी जीवोंमें परस्पर जातिविरोध होता है । परस्पर एक दूसरेको नानाप्रकारके भयानक घोर दु:ख देते हैं । छेदन भेदन ताडन मारण आदि नानाप्रकारकी घोर वेदनाओंको भोगते हुए निरन्तर दु:सह दु:खका अनुभव करते रहते हैं । कोई किसीको कोल्हूमें पेलता है, कोई गरम लोहेकी पुतलीसे आलिंगन कराता है तथा वज्राग्निमें पचाता है, अथवा पीपके कुंडमें पटकता है । बहुत कहनेसे क्या नरकके एक समयके दु:खको सहस्र जिव्हावाला भी वर्णन नहीं कर सकता । नरकमें समस्त कारण क्षेत्रस्वभावसे ही दु:खदायक होते हैं । एक दूसरेको देखते ही कुपित हो जाते हैं जो अन्य भवमें मित्र था, वह भी नरकमें शत्रुभावको प्राप्त होता है । जितनी जिसकी आयु है उसको उतने काल पर्यंत ये सब दु:ख भोगने ही पडते हैं । क्योंकि नरकमें अकालमृत्यु नहीं है । जिस जीवने नरक आयुकी जितनी स्थिति बांधी है, उतने वर्ष पर्यन्त उसको नरकमें रहना ही पडता है । यहां इतना विशेष जानना कि, जिस जीवने आगामी भवकी नरकआयु बांधी है उस जीवके वर्त्तमान (मनुष्य या तिर्यंच) भवमें नरकायुकी स्थिती हीनाधिक हो सकती है, किन्तु नरक आयुकी स्थिती उदय आनेके पीछे हीनाधिक नहीं हो सकती । महापापोंके सेवन करनेसे यह जीव नरकको जाता है जहां चिरकालपर्यन्त घोर दु:ख भोगने पडते हैं । इसलिये जो महाशय इन नरकोंके घोर दु:खोंसे भयभीत हुए हों, वे जूआ चोरी मद्य मांस वेश्या परस्त्री तथा शिकार आदिक महापापोंको दूरहीसे छोड देवें । अब आगे संक्षेपसे मध्यलोकका कथन करते हैं;—

मध्यलोक ।

अधोलोकसे ऊपर एक राजू लम्बा एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊंचा मध्यलोक है । इस मध्यलोकके बिलकुल बीचमें गोलाकार एक लक्ष योजन व्यासवाला जम्बूद्वीप है । जम्बूद्वीपको खाईकी तरह बेड़े हुए गोलाकार लवणसमुद्र है । इस लवणसमुद्रकी चौड़ाई सर्वत्र दो लक्ष योजन है । पुनः लवणसमुद्रको चारों तरफसे बेढ़े हुए गोलाकार धातुकीखण्डद्वीप है, जिसकी चौड़ाई सर्वत्र चार लक्ष योजन है । धातुकीखंडको चारों तरफसे बेढ़े हुए आठ लक्ष योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है । तथा कालोदधि समुद्रको चारों तरफसे बेढ़े हुए सोलह लक्ष योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है । इसही प्रकारसे दूने दूने विस्तारको लिये परस्पर एक दूसरेको बेढ़े हुए असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । अंतमें स्वयंभूरमण समुद्र है । चारों कोनोंमें पृथ्वी है । पुष्करद्वीपके बीचों बीच मानुषोत्तरपर्वत है, जिससे पुष्करद्वीपके दो भाग हो गये हैं । जम्बूद्वीप धातुकीखंड और पुष्करार्द्ध, इस प्रकार ढाई द्वीपमें मनुष्य रहते हैं । ढाई द्वीपके बाहर मनुष्य नहीं है तथा तिर्यंच समस्त मध्यलोकमें निवास करते हैं स्थावर जीव समस्त लोकमें भरे हुए हैं । जलचर जीव लवणोदधि कालोदधि और स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रोंमें ही होते हैं, अन्य समुद्रोंमें नहीं ।

जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन चौड़ा गोलाकार है । इस जम्बूद्वीपमें पूर्व और पश्चिम दिशामें लम्बायमान दोनों तरफ पूर्व और पश्चिम समुद्रको स्पर्श करते हुए १ हिमवन्, २ महाहिमवन्, ३ निषध, ४ नील, ५ रुक्मि और ६ शिखरी, इस प्रकार छह कुलाचल (पर्वत) हैं । इन कुलाचलोंके निमित्तसे सात भाग हो गये हैं ।

दक्षिण दिशाके प्रथमभागका नाम भरतक्षेत्र, द्वितीय भागका नाम हैमवत और तृतीय भागका नाम हरिक्षेत्र है। इसही प्रकार उत्तर दिशाके प्रथम भागका नाम ऐरावत, द्वितीय भागका नाम हैरण्यवत और तृतीय भागका नाम रम्यकक्षेत्र है। मध्य भागका नाम विदेह-क्षेत्र है। भरत–क्षेत्रकी चौड़ाई ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है अर्थात् जम्बूद्वीपकी चौड़ाईके एक लक्ष योजनके १९० भागोंमेंसे एक भाग प्रमाण है। हिमवत् पर्वतकी आठ भाग प्रमाण, हरिक्षेत्रकी १६ भाग प्रमाण और निषध पर्वतकी ३२ भाग प्रमाण है। मिलकर ६३ भाग प्रमाण हुए। तथा इसही प्रकार उत्तर दिशामें ऐरावत क्षेत्रसे लगाकर नीलपर्वततक ६३ भाग हैं। सब मिलकर १२६ भाग हुए। तथा मध्यका विदेहक्षेत्र ६४ भाग प्रमाण है। ये सब भाग मिलकर जम्बूद्वीपकी चौड़ाई १९० भाग अथवा एक लक्ष योजन प्रमाण होती है।

हिमवन् पर्वतकी ऊंचाई १०० योजन, महाहिमवन्‌की २०० योजन, निषधकी ४००, नीलकी ४००, रुक्मीकी २००, और शिखरीकी ऊंचाई १०० योजन है। इन सब कुलाचलोंकी चौड़ाई ऊपर नीचे तथा मध्यमें समान है। इन कुलाचलोंके पसवाड़ोंमें अनेक प्रकारकी मणियां हैं। ये हिमवदादिक छहों पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चांदी, तपे हुए सुवर्ण, वैडूर्य, चांदी और सुवर्णके हैं। इन हिमवदादि छहों कुलाचलोंके ऊपर क्रमसे पद्म, महापद्म, तिगिंच्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक संज्ञक छह कुण्ड हैं। इन पद्मादिक कुण्डोंकी क्रमसे लंबाई १०००।२०००।४०००।४०००। २००० और १००० योजन है। चौड़ाई ५००।१०००।२०००। २०००।१००० और ५०० योजन है। गहराई १०।२०।४०।४०।

२० और १० योजन है । इन पद्मादिक सब कुण्डोंमें एक एक कमल है, जिनकी ऊंचाई तथा चौड़ाई १।२।४।४।२ और १ योजन प्रमाण है । इन कमलोंमें पल्योपम आयुवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी जातिकी देवियां सामानिक और पारिषद् जातिके देवोंसहित क्रमसे निवास करती हैं ।

इन भरतादि सात क्षेत्रोंमें एक एकमें दो दोके क्रमसे गंगा सिन्धु रोहित् रोहितास्या हरित् हरिकान्ता शीता शीतोदा नारी नरकान्ता सुवर्णकूला रूप्यकूला रक्ता और रक्तोदा ये १४ चौदह नदी हैं । इन सात युगलोंमेंसे गंगादिक पहली पहली नदियां पूर्वसमुद्रमें और सिन्ध्वादिक पिछली पिछली नदियां पश्चिमसमुद्रमें प्रवेश करती हैं । गंगा सिन्धु रोहितास्या ये तीन नदी पद्मकुण्डमेंसे निकली हैं । रक्ता रक्तोदा और सुवर्णकूला पुण्डरीककुण्डमेंसे निकली हैं । शेष चार कुण्डोंमेंसे शेष आठ नदियां निकली हैं, अर्थात् एक एक कुण्डमेंसे एक एक पूर्वगामिनी और एक एक पश्चिमगामिनी इस प्रकार दो दो नदियां निकली हैं । गंगा सिन्धु इन दो महानदियोंका परिवार चौदह चौदह हजार क्षुल्लक नदियोंका है । रोहित् रोहितास्या प्रत्येकका परिवार अट्ठाईस अट्ठाईस हजार नदियां हैं । इसही प्रकार शीता शीतोदापर्यंत दूना दूना और आगे आधा आधा परिवारनदियोंका प्रमाण है । विदेहक्षेत्रके बीचोंबीच सुमेरु पर्वत है । सुमेरु पर्वतकी एक हजार योजन भूमिमें जड़ है । तथा निन्यानवै हजार योजन भूमिके ऊपर ऊंचाई है और चालीस योजनकी चूलिका है । यह सुमेरुपर्वत गोलाकार भूमिपर दश हजार योजन चौड़ा तथा ऊपर एक हजार योजन चौड़ा है सुमेरु पर्वतके चारोंतरफ भूमिपर भद्रशालवन है । यह भद्रशालवन पूर्व और पश्चिमदिशामें बावीस

चावीस हजार योजन और उत्तर दक्षिणदिशामें ढाई ढाई सौ योजन चौड़ा है । पृथ्वीसे पांचसौ योजन ऊंचा चलकर सुमेरुकी चारोंतरफ प्रथम कटनीपर पांचसौ योजन चौड़ा नंदनवन है । नंदनवनसे बासठ हजार पांचसौ योजन ऊंचा चलकर सुमेरुकी चारों तरफ द्वितीय कटनीपर पांचसौ योजन चौडा सौमनस-वन है । सौमनसवनसे छत्तीस हजार योजन ऊंचा चलकर सुमेरुके चारों तरफ तीसरी कटनीपर चारसौ चौरानवै योजन चौडा पाण्डुकवन है । मेरुकी चारों विदिशाओंमें चार गजदंत पर्वत हैं । दक्षिण और उत्तर भद्रशाल तथा निषध और नीलपर्वतके बीचमें देवकुरु और उत्तरकुरु हैं । मेरुकी पूर्वदिशामें पूर्वविदेह और पश्चिमदिशामें पश्चिमविदेह है । पूर्वविदेहके बीचमें होकर शीता और पश्चिमविदेहमें होकर शीतोदा नदी पूर्व और पश्चिमसमुद्रको गई हैं । इसप्रकार दोनों नदियोंके दक्षिण और उत्तर तटकी अपेक्षासे विदेहके चार भाग हैं । इन चारों भागोंमेंसे प्रत्येक भागमें आठ आठ देश हैं । इन आठ देशोंका विभाग करनेवाले वक्षारपर्वत तथा विभंगा नदीं हैं । भावार्थ—१ पूर्वभद्रशालवनकी वेदी, २ वक्षार, ३ विभंगा, ४ वक्षार, ५ विभंगा, ६ वक्षार, ७ विभंगा, ८ वक्षार और देवारण्यकी वेदी इसप्रकार नव सीमाओंके बीचबीचमें आठआठ देश हैं । इसप्रकार विदेहक्षेत्रमें ३२ देश हैं । भरत और ऐरावत क्षेत्रके बीचमें विजयार्द्ध पर्वत है । इन पर्वतोंमें दो दो गुफा हैं, जिनमें होकर गंगा सिन्धु और रक्ता रक्तोदा नदी निकली हैं । इस प्रकार भरत और ऐरावतके छह छह खंड हो गये हैं । इनमेंसे एक एक आर्यखंड और पांच पांच म्लेच्छखण्ड हैं ।

जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखंड और पुष्करार्धद्वीपमें है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, धातुकीखण्ड और पुष्करार्द्ध इन दोनों द्वीपोंकी पूर्व और पश्चिम दिशामें दो दो मेरु हैं अर्थात् दो मेरु धातुकीखण्डमें और पुष्करार्द्धमें हैं । जिसप्रकार क्षेत्र कुलाचल द्रह कमल और नदी आदिकका कथन जम्बूद्वीपमें है, उतनाही उतना प्रत्येक मेरुका समझना । भावार्थ—जम्बूद्वीपसे दूनी रचना धातुकीखण्डकी और धातुकीखंडके समान रचना पुष्करार्द्धकी है । इनकी लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई आदिकका कथन विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा है । जिन्हें सविस्तर जाननेकी इच्छा होय, उन्हें त्रैलोक्यसार ग्रन्थसे जानना चाहिये।

मनुष्यलोकके भीतर पंद्रह कर्मभूमि और तीस भोगभूमि हैं। भावार्थ—एक एक मेरुसंबंधी भरत, ऐरावत, तथा देवकुरु और उत्तरकुरुको छोड़कर विदेह, इसप्रकार तीन तीन तो कर्मभूमि और हैमवत, हरि, देवकुरु, उत्तरकुरु, रम्यक और हैरण्यवत ये छह छह भोगभूमि हैं । पांचों मेरुकी मिलकर १५ कर्मभूमि और ३० भोगभूमि हैं। जहां असिमसिकृष्यादि षट्कर्मकी प्रवृत्ति हो, उसको कर्मभूमि कहते हैं और जहां कल्पवृक्षोंद्वारा भोगोंकी प्राप्ति हो, उसको भोगभूमि कहते हैं । भोगभूमिके तीन भेद हैं—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम और ३ जघन्य । हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि हैं। हरि और रम्यक क्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि और देवकुरु तथा उत्तरकुरुमें उत्कृष्ट भोगभूमि है । मनुष्यलोकसे बाहर सर्वत्र जघन्य भोगभूमिकीसी रचना है किन्तु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें तथा चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकीसी रचना है । द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरि-

न्द्रिय जीव भोगभूमिमें नहीं होते अर्थात् पंद्रह कर्मभूमि और उत्तरार्द्ध अन्तिम द्वीप तथा समस्त अन्तिम समुद्रमें ही विकलत्रय जीव है । तथा समस्त द्वीपसमुद्रोंमेंभी भवनवासी और व्यंतरदेव निवास करते हैं ।

यद्यपि कल्पकालका कथन कालाधिकारमें करना चाहिये था, परंतु कर्मभूमि और भोगभूमिसे उसका घनिष्ट सम्बन्ध है । इसकारण प्रसङ्गवश यहां कुछ कल्पकालका कथन किया आता है । वीस कोडाकोडी अद्धासागरके समयोंके समूहको कल्प कहते हैं । कल्पकालके दो भेद हैं एक अवसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी । अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दोनोंही कालोंका प्रमाण दश दश कोडाकोडी सागरका है । अवसर्पिणीकालके छह भेद हैं, १ सुषमासुषमा, २ सुषमा, ३ सुषमादु:षमा, ४ दु:षमासुषमा, ५ दु:षमा और ६ दु:षमादु:षमा । उत्सर्पिणीके भी छह भेद, विपरीतक्रमसे हैं । १ दु:षमादु:षमा, २ दु:षमा, ३ दु:षमासुषमा, ४ सुषमादु:षमा, ५ सुषमा, और ६ सुषमासुषमा । सुषमासुषमाका प्रमाण चार कोडाकोडी सागर है । सुषमाका प्रकार तीन कोडाकोडी सागर है । सुषमादु:षमाका प्रमाण दो कोडाकोडी सागर है । दु:षमासुषमाका प्रमाण ४२००० वर्ष घाटि एक कोडाकोडी सागर है । दु:षमाका प्रमाण २१००० वर्ष है, तथा दु:षमादु:षमाका भी प्रमाण २१००० वर्ष है । पांच मेरुसंबंधी पांच भरतक्षेत्र तथा पांच ऐरावत क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीके छह २ कालोंके द्वारा वहां रहनेवाले जीवोंके आयु: शरीर बल वैभवादिककी हानि वृद्धि होती है । भावार्थ;—अवसर्पिणीके छहों कालोंमें क्रमसे घटते हैं । और उत्सर्पिणीके छहों कालोंमें क्रमसे बढ़ते हैं । अवसर्पिणीकालके

प्रथम कालकी आदिमें जीवोंकी आयु तीन पल्य प्रमाण है और अंतमें दो पल्य प्रमाण है। दूसरे कालके आदिमें दो पल्य और अन्तमें एक पल्य प्रमाण है। तीसरे कालकी एक पल्य और अन्तमें एक कोटि[1] पूर्व वर्ष प्रमाण है। चतुर्थ कालके आदिमें कोटिपूर्व और अन्तमें १२० वर्ष है। पांचवें कालके आदिमें १२० वर्ष, अन्तमें २० वर्ष है। छठे कालके आदिमें २० वर्ष और अन्तमें १५ वर्ष है। यह सब कथन उत्कृष्टकी अपेक्षासे है। वर्तमानमें कहीं कहीं एकसौ वीस वर्षसे अधिक आयुभी सुननेमें आती है सो हुंडावसर्पिणीके निमित्तसे है। अनेक कल्प काल वीतनेपर एक हुंडाकाल आता है इस हुंडाकल्पमें कई बातें विशेष होतीं हैं। जैसे चक्रवर्तीका अपमान, तीर्थंकरके पुत्रीका जन्म और शलाका पुरुषोंकी संख्यामें हानि। उसही प्रकार आयुके संबंधमें भी यह हुंडाकृत विशेषता है। पहले कालकी आदिमें मनुष्योंके शरीरकी ऊंचाई तीन कोश, अंतमें दो कोश हैं। दूसरेकी आदिमें दो कोश, अंतमें एक कोश है। तीसरेकी आदिमें एक कोश, अंतमें पांचसौ धनुष है। चौथे कालकी आदिमें पांचसौ धनुष, अंतमें सात हाथ है। पांचवेके आदिमें सात हाथ, अंतमें दो हाथ हैं। छठेके आदिमें दो हाथ, अंतमें एक हाथ है। इसही प्रकार बल वैभवादिकका क्रम जानना।

भोगभूमियोंको भोजन वस्त्र आभूषण आदि समस्त भोगोपभोगकी सामग्री दशप्रकारके कल्पवृक्षोंसे मिलती है। भोगभूमिमें पृथ्वी दर्पणसमान मणिमयी छोटे छोटे सुगन्धित तृणसंयुक्त है। भोगभूमिमें माताके गर्भसे युगपत् स्त्रीपुरुषका युगल उत्पन्न होता है। भोगभूमिमें

---

१ चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग और चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है।

बालक ४९ दिनमें क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। भोगभूमिया सदाकाल भोगोंमें आसक्त रहते हैं तथा आयुके अंतमें पुरुष छींक लेकर और स्त्री जंभाई लेकर मरणको प्राप्त होते हैं। और उनका शरीर शरत्कालके मेघकी तरह विलुप्त हो जाता है। ये भोगभूमिया सबही मरणके पश्चात् नियमसे देवगतिको जाते हैं। प्रथमकालकी आदिमें उत्कृष्ट भोगभूमि है। फिर क्रमसे घटकर द्वितीय कालकी आदिमें मध्यम तथा तीसरेकी आदिमें जघन्य भोग-भूमि है। पुनः क्रमसे घटकर तीसरेके अंतमें कर्मभूमिका प्रवेश होता है। तीसरे कालमें जब पल्यका आठवां भाग बाकी रहता है, तब मनुष्योंमें क्रमसे १४ कुलकर उत्पन्न होते हैं। इन कुलकरोंमें कई जातिस्मरण तथा कई अवधिज्ञानसंयुक्त होते हैं। ये कुलकर मनुष्योंके अनेक प्रकारके भय दूर करके उनको उत्तम शिक्षा देते हैं. चतुर्थकालमें ६३ शलाका (पदवीधारक) पुरुप होते हैं। जिनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र होते हैं। इन ६३ शलाका पुरुपोंका सविस्तर कथन प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंसे जानना। यहां इतना विशेष हैं, कि इस दुर्गम संसारसे मुक्ति इस चतुर्थकालमेंही होती है। चोबीसवें तीर्थंकरके मोक्ष जानेसे ६०५ वर्ष ५ मास पीछे पंचमकालमें शक राजा होता है। इस शक राजाके ३९४ वर्ष ७ मास पीछे कल्की राजा होता है। इस कल्कीकी आयु ७० वर्षकी होती है। जिसमें ४० वर्ष राज्य करता है। तथा धर्मविमुख आचरणमें तल्लीन रहता है। कल्कीका पुत्र धर्मके सन्मुख सदाचारी होता है। इसप्रकार एक एक हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की राजा होता है। तथा इन कल्कियोंके बीचबीचमें एक एक उपकल्की होता है। यहां इतना विशेष

जानना कि मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका चार प्रकार जिनधर्मके संघका सद्भाव पंचमकाल पर्यन्तही है । भावार्थ–पंचम कालके अन्तमें धर्म अग्नि और राजा इन तीनोंका नाश होकर छठे कालमें मनुष्य पशुकी तरह नग्न धर्मरहित मांसाहारी होते हैं । इस छठे कालमें मरेहुए जीव नरक और तिर्यंच गतिकोही जाते हैं । तथा नरक और तिर्यंच इन दो गतिमेंसे ही मरण करके इस छठे कालमें जन्म लेते हैं । इस छठे कालमें मेघवृष्टि वहुत थोड़ी होती है तथा पृथ्वी, रत्नादिक सारवस्तुरहित होती है । और मनुष्य तीव्रकषाय-युक्त होते हैं । छठे कालके अन्तमें संवर्तक नामक वड़े जोरका पवन चलता है, जिससे पर्वत वृक्षादिक चूरचूर हो जाते हैं । तथा वहां वसनेवाले कुछ जीव मरजाते अथवा कुछ मूर्च्छित हो जाते हैं । उस समय विजयार्ध पर्वत तथा महागंगा और महासिन्धु नदियोंकी वेदियोंके छोटे छोटे विलोंमें उन वेदी और पर्वतके निकटवासी जीव स्वयमेव प्रवेश करते हैं । अथवा दयावान् देव और विद्याधर मनुष्ययुगल आदिक अनेक जीवोंको उठाकर विजयार्द्ध पर्वतकी गुफादिक निर्वाधस्थानोंमें ले जाते हैं । इस छठे कालके अंतमें सात सात दिन पर्यन्त क्रमसे १ पवन, २ अत्यन्त शीत, ३ क्षाररस, ४ विप, ५ कठोर अग्नि, ६ धूल और ७ धुवां, इसप्रकार ४९ दिनमें सात वृष्टियां होती हैं । जिससे अवशिष्ट मनुष्यादिक जीव नष्ट हो जाते हैं । तथा विष और अग्निकी वर्षासे पृथ्वी एक योजन नीचेतक चूरचूर हो जाती है । इसहीका नाम महाप्रलय है । यहां इतना विशेष जानना कि; यह महा-प्रलय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके आर्यखण्डोंमें ही होता है अन्यत्र नहीं होता है । अव आगे उत्सर्पिणी कालके प्रवेशका अनुक्रम कहेते हैं ।

उत्सर्पिणीके दुःषमादुःषमा नामक प्रथम कालमें सबसे पहले सात दिन जलवृष्टि, सात दिन दुग्धवृष्टि, सात दिन घृतवृष्टि और सात दिनतक अमृतवृष्टि होती है। जिससे पृथ्वीमें पहले अग्निआदिककी वृष्टिसे जो उष्णता हुई थी, वह चली जाती है और पृथ्वी कान्तियुक्त सचिक्कण हो जाती है और जलादिककी वर्षासे नानाप्रकार लता बेलि विविध औषधि तथा गुल्मवृक्षादिक वनस्पति, उत्पत्ति तथा वृद्धिको प्राप्त होती हैं। इस समय पृथ्वीकी शीतलता तथा सुगन्धताके निमित्तसे पहले जो प्राणी विजयार्द्ध तथा गंगा सिंधु नदीकी वेदियोंके बिलोंमें पहुंच गये थे, वे इस पृथ्वीपर आकर जहां तहां बस जाते हैं। इस कालमें मनुष्य धर्मरहित नग्न रहते हैं और मृत्तिका आदिका आहार करते हैं। इस कालमें जीवोंकी आयु कायादिक क्रमसे बढते हैं। इसके पीछे उत्सर्पिणीका दुःषमा नामक दूसरा काल प्रवर्तता है। इस कालमें जब एक हजार वर्ष अवशिष्ट रहते हैं, तब १६ कुलकर होते हैं। ये कुलकर मनुष्योंको क्षत्रिय आदिक कुलोंके आचार तथा अग्निसे अन्नादिक पचानेका विधान सिखाते हैं। उसके पीछे दुःषमासुषमा नामक तृतीयकाल प्रवर्तता है, जिसमें त्रेसठ शलाकापुरुष होते हैं। उत्सर्पिणीमें केवल इसही कालमें मोक्ष होती है। तत्पश्चात् चौथे पांचवें और छठे कालमें भोगभूमि हैं। जिनमें आयुः कायादिक क्रमसे बढ़ते जाते हैं। भावार्थ—अवसर्पिणीके १।२।३।४।५।६ कालकी रचना उत्सर्पिणीके ६।५।४।३।२।१ कालकी रचनाके समान है। यहां इतना विशेष जानना कि आयुकायादिककी क्रमसे अवसर्पिणीमें तो हानि होती है और उत्सर्पिणीमें वृद्धि होती है।

देवकुरु और उत्तरकुरुक्षेत्रमें सदाकाल पहले कालकी आदिकी

रचना है । दूसरे कालकी आदिकी रचना हरि और रम्यकक्षेत्रमें सदाकाल रहती है । तीसरे कालकी आदिकी रचना हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रमें अवस्थित है । चौथे कालकी आदिकी रचना विदेह क्षेत्रोंमें अवस्थित है । भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके पांच पांच म्लेच्छ-खंड तथा विद्याधरोंके निवासभूत विजयार्द्ध पर्वतकी श्रेणियोंमें सदा चौथा काल प्रवर्तता है । यहां इतना विशेष जानना कि, जब आर्यखंडमें अवसर्पिणीका प्रथम द्वितीय तृतीय तथा उत्सर्पिणीका चतुर्थ पंचम षष्ट काल वर्तता है, उस समय यहां अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके आदिकी अथवा उत्सर्पिणीके तृतीय कालके अंतकी रचना रहती है । तथा जिस समय आर्यखंडमें अवसर्पिणीके पंचम और षष्ट तथा उत्सर्पिणीके प्रथम और द्वितीय कालकी रचना है, उस समय यहां अवसर्पिणीके चतुर्थ कालके अंतकी अथवा उत्स-र्पिणीके तृतीय कालके आदिकी रचना है । और आर्यखंडमें जिस प्रकार क्रमसे हानिवृद्धियुक्त अवसर्पिणीके चतुर्थ अथवा उत्सर्पिणीके तृतीयकालकी रचना है, उसही प्रकार यहां भी जानना । आधा स्वयंभूरमण द्वीप तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें पंचमकालके आदिकीसी दुःषमा कालकी रचना है । और इनके सिवाय मनुष्यलोकसे बाहर समस्त द्वीपोंमें तथा कुभोग-भूमियोंमें तीसरे कालकी आदिकी सी जघन्य भोगभूमिकी रचना है। लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तर्द्वीप हैं, जिनमें कुभोग-भूमिकी रचना है । पात्रदानके प्रभावसे यह जीव भोगभूमिमें उपजता है । और कुपात्रदानके प्रभावसे कुभोगभूमिमें जाता है । इन कुभोग-भूमियोंमें एक पल्य आयुके धारक कुमनुष्य निवास करते हैं । इन कुमनुष्योंकी आकृति नानाप्रकार है । किसीके केवल एक जंघा है ।

किसीके पूंछ है। किसीके सींग है। कोई गूंगे हैं। किसीके बहुत लम्बे कान हैं, जो ओढ़नेके काममें आते हैं। किसीके मुख, सिंह घोडा कुत्ता भैंसा बन्दर इत्यादिकके समान हैं। ये कुमनुष्य वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वसते हैं, और वहांकी मीठी मिट्टी खाते हैं, ये कुभोगभूमिया तथा भोगभूमिया मरकर नियमसे देवगतिमेंही उपजते हैं। इसही मध्यलोकमें ज्योतिष्क देवोंका निवास है, इसलिये प्रसंगवश यहां संक्षेपसे ज्योतिप्चक्रका वर्णन किया जाता है।

ज्योतिष्क देवोंके सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे इस प्रकार पांच भेद हैं। चित्रा पृथ्वीसे ७९० योजन ऊपर तारे हैं। तारोंसे दश योजन ऊपर सूर्य हैं। और सूर्योंसे ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। चन्द्रमाओंसे चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे चार योजन ऊपर बुध हैं। बुधोंसे तीन योजन ऊपर शुक्र हैं। शुक्रसे तीन योजन ऊपर गुरु हैं। गुरुसे तीन योजन ऊपर मंगल हैं। और मंगलसे तीन योजन ऊपर शनैश्चर हैं। बुधादिक पांच ग्रहोंके सिवाय तेरासी ग्रह और हैं, जिनमेंसे राहुके विमानका ध्वजादण्ड चन्द्रमाके विमानसे और केतुके विमानका ध्वजादण्ड सूर्यके विमानसे चार प्रमाणांगुल नीचे है। अवशेष इक्यासी ग्रहोंके रहनेकी नगरी बुध और शनिके बीचमें है। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, देवगतिके चार भेदोंमेंसे ज्योतिष्क जातिके देव इन ज्योतिष्क विमानोंमें निवास करते हैं। इस ज्योतिष्क पटलकी मोटाई ऊर्द्ध और अधोदिशामें ११० योजन है। और पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलयपर्यंत है। तथा उत्तर और दक्षिण दिशामें एक राजू प्रमाण है। यहां इतना विशेष जानना

कि, सुमेरु पर्वतके चारों तरफ ११२१ योजनतक ज्योतिष्क विमानोंका सद्भाव नहीं है। मनुष्यलोकपर्यंत ज्योतिष्क विमान नित्य सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। किन्तु जम्बूद्वीपमें ३६, लवण समुद्रमें १३९, धातुकी खंडमें १०१०, कालोदधिमें ४११२० और पुष्करार्द्धमें ५३२३० ध्रुव तारे (गतिरहित) हैं। और मनुष्य-लोकसे बाहर समस्त ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं। अपनी अपनी जातिके ज्योतिष्क विमान समतलमें हैं। अर्थात् उनका ऊपरी भाग आकाशकी एकही सतहमें हैं। ऊंचे नीचे नहीं है। किन्तु तिर्यक् अंतर कुछ न कुछ अवश्य है। तारोंमें परस्पर जघन्य अन्तर एक कोशका सातवां भाग है। मध्यम अन्तर पचास योजन और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है। इन समस्त ज्योतिष्क विमानोंका आकार आधे गोलेके समान है। भावार्थ—जैसे एक लोहके गोलेके समान दो खण्ड करके उनमेंसे एक खंडको इसप्रकारसे स्थापन करै कि, गोल भाग तो नीचेकी तरफ हो और समतलभाग ऊपरकी तरफ हो। ठीक ऐसा ही आकार समस्त ज्योतिष्क विमानोंका है। इन विमानोंके ऊपर ज्योतिषी देवोंके नगर वसते हैं। ये नगर अत्यन्त रमणीक और जिनमन्दिरसंयुक्त हैं। अब आगे इन विमानोंकी चौड़ाई और मोटाईका प्रमाण कहते हैं:—

चन्द्रमाके विमानका व्यास $\frac{५६}{६१}$ योजन (एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे छप्पन भाग) है सूर्यका विमान $\frac{४८}{६१}$ योजन चौड़ा है। शुक्रका विमान एक कोश और बृहस्पतिका किंचिदून (कुछ कम) एक कोश चौड़ा है। तथा बुध मङ्गल और शनिके विमान आध-आध कोश चौड़े हैं। तारोंके विमान कोई पावकोश कोई आधकोश कोई पौनकोश और कोई एक कोश चौड़े हैं। नक्षत्रोंके विमान एक एक

प्रमाणका भाग देनेसे वलयोंके अन्तरका प्रमाण आता है । इसको आधा करनेसे अभ्यन्तर वाह्यवेदी और प्रथम तथा अन्तिम वलयके अन्तरका प्रमाण होता है । पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धके प्रथम वलयमें १४४ चंद्रमा हैं । द्वितीय तृतीयादिक वलयेंमें चार चार अधिक हैं । पुष्करद्वीपके उत्तरार्द्धमें सब वलयोंके चन्द्रमाओंका जोड़ १२६४ होता है । पुष्कर समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ चंद्रमा हैं । अर्थात् पुष्करके उत्तरार्द्धके वलयमें स्थित चंद्रमाओंसे दूने हैं । इसही प्रकार आगे स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त पूर्व पूर्व द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चंद्रमाओंके प्रमाणसे उत्तर उत्तर द्वीप वा समुद्रके प्रथम वलयस्थित चंद्रमाओंका प्रमाण दूना है । तथा प्रथम प्रथम वलयोंके चंद्रमाओंसे द्वितीयादिक वलयस्थित चंद्रमाओंकी संख्या सर्वत्र चार चार अधिक है । पुष्करसमुद्रमें ३२ वलय हैं । जिनके समस्त चंद्रमाओंका जोड़ ११२०० है । इससे अगले द्वीपमें ६४ वलय हैं, जिनके समस्त चंद्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ है । भावार्थ—पूर्व पूर्व द्वीप वा समुद्रके चंद्रमाओंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप वा समुद्रके चंद्रमाओंका प्रमाण चौगुना चौगुना है । परन्तु इतना विशेष जानना कि, उत्तरद्वीप वा समुद्रके वलयोंके प्रमाणसे दूना प्रमाण उस चौगुनी संख्यामें और मिलाना चाहिये । जैसे पूर्व पुष्कर समुद्रके चंद्रमाओंकी संख्या ११२०० जिसको चौगुना करनेसे ४४८०० हुए, इसमें उत्तरद्वीपके वलयोंके प्रमाण ६४ के दूने १२८ मिलानेसे उत्तरद्वीपके चंद्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ होता है । इसही प्रकार आगे भी सर्वत्र जानना । समस्त द्वीपसमुद्रोंके समस्त चंद्रमाओंका प्रमाण संख्यातसूच्यंगुलसे जगच्छ्रेणीको गुणाकार करनेसे जो गुणनफल हो, उसको जगत्प्रतरमेंसे घटानेसे जो अवशेष रहै, उसमें

६५५३६ को ५२९२००००००००००००००००० से गुणाकार करनेसे जो प्रमाण हो, उतने प्रतरांगुलका भाग देनेसे जो लब्ध आवै उतना है। प्रत्येक चन्द्रमा (इन्द्र) के साथ एक एक सूर्य (प्रतीन्द्र) है। अठ्यासी अठ्यासी ग्रह, अट्ठाईस अट्ठाईस नक्षत्र और छ्यासठ हजार नौसे पिचहत्तर कोड़ाकोडी तारे हैं। अर्थात् सूर्योंका प्रमाण चन्द्रमाओंके प्रमाणके समान है। ग्रहोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे ८८ गुणित है। नक्षत्रोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे २८ गुणित है। और तारोंका प्रमाण चंद्रमाओंके प्रमाणसे छ्यासठ हजार नौसे पिचहत्तर कोड़ाकोडी गुणित है। अब आगे जंबूद्वीपमें सूर्य और चंद्रमाके गमनमें कुछ विशेष है, उसका स्पष्टीकरण करनेके लिये चार क्षेत्रका वर्णन किया जाता हैं।

चंद्रमा अथवा सूर्यके गमन करनेकी गलियोंको चार क्षेत्र कहते हैं। समस्त गलियोंके समूहरूप चार क्षेत्रकी चौड़ाई ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। जिस गलीमें एक चंद्रमा वा सूर्य गमन करते हैं। उसीमें ठीक उसके सामने दूसरा चंद्रमा या सूर्य गमन करता है। इस चार क्षेत्रकी ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन चौड़ाईमेंसे १८० योजन तो जम्बूद्वीपमें हैं। और ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन लवणसमुद्रमें हैं। चंद्रमाके गमन करनेकी १५ और सूर्यके गमन करनेकी १८४ गली हैं, जिन सबमें समान अन्तर है। ये दो दो सूर्य वा चंद्रमा प्रतिदिन एक एक गलीको छोड़ छोड़कर दूसरी दूसरी गलीमें गमन करते हैं। जिस दिन सूर्य भीतरी गलीमें गमन करता है, उस दिन १८ मुहूर्त (४८ मिनिटका एक मुहूर्त होता है) का दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि होती है। तथा क्रमसे घटते घटते जिस दिन बाहिरी गलीमें गमन करता है, उस दिन १२ मुहूर्तका दिन और १८ मुहूर्तकी

रात्रि होती है। सूर्य कर्क संक्रान्तिके दिन अभ्यन्तर वीथी (भीतरी गली) में गमन करता है। उसही दिन दक्षिणायनका प्रारंभ होता है। और मकरसंक्रान्तिके दिन बाह्य वीथीपर गमन करता है। उसही दिन उत्तरायणका प्रारंभ होता है। प्रथम वीथीसे १८४ वीं वीथीमें आनेमें १८३ दिन लगते हैं। तथा उसही प्रकार अन्तिम वीथीसे प्रथम वीथीपर आनेमें १८३ दिन लगते हैं। दोनों अयनोंके मिले-हुए दिन ३६६ होते हैं। इसहीको सूर्यवर्ष कहते हैं। एक सूर्य ६० मुहूर्तमें मेरुकी प्रदक्षिणा पूरी करता है। अथवा मेरुकी प्रदक्षिणारूप आकाशमय परिधिमें एक लाख नव हजार आठसौ गगन-खंडोंकी कल्पना करना चाहिये। इन खंडोंमें गमन करनेवाले ज्योतिषियोंकी गति इस प्रकार है,—चंद्रमा एक मुहूर्तमें १७६८ खंडोंमें गमन करता है। सूर्य एक मुहूर्तमें १८३० गगनखंडोंको तय करता है। और नक्षत्र एक मुहूर्तमें १३५ गगनखंडोंको तय करते हैं। चंद्रमाकी गति सबसे मंद है, चंद्रमासे शीघ्रगति सूर्यकी है, सूर्यसे शीघ्रगति ग्रहोंकी है, ग्रहोंसे शीघ्रगति नक्षत्रोंकी है। और नक्षत्रोंसे शीघ्रगति तारोंकी है। इसप्रकार संक्षेपसे ज्योतिषचक्रका कथन किया। इसका सविस्तर कथन त्रैलोक्यसारसे जानना। इस प्रकार मध्यलोकका संक्षेपसे कथन करके अब आगे ऊर्द्ध्वलोकका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है।

ऊर्द्ध्वलोक।

मेरुसे ऊर्द्ध्वलोकके अन्ततकके क्षेत्रको ऊर्द्ध्वलोक कहते हैं। इस ऊर्द्ध्वलोकके दो भेद हैं, एक कल्प और दूसरा कल्पातीत। जहां इंद्रादिककी कल्पना होती है, उनको कल्प कहते हैं। और जहां यह कल्पना नहीं है, उसे कल्पातीत कहते हैं। कल्पमें १६ स्वर्ग

हैं। १ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर, ७ लांतव, ८ कापिष्ट, ९ शुक्र, १० महाशुक्र, ११ सतार, १२ सहस्रार, १३ आनत, १४ प्राणत, १५ आरण और १६ अच्युत। इन सोलह स्वर्गोंमेंसे दो दो स्वर्गोंमें संयुक्त राज्य है। इस कारण सौधर्म ईशान तथा सनत्कुमार माहेन्द्र इत्यादि दो दो स्वर्गोंका एक एक युगल है। आदिके दो तथा अन्तके दो इसप्रकार चार युगलोंमें आठ स्वर्गोंके आठ इन्द्र हैं। और मध्यके चार युगलोंके चारही इन्द्र हैं। इसलिये इन्द्रोंकी अपेक्षासे स्वर्गोंके १२ भेद हैं। सोलह स्वर्गोंके ऊपर कल्पातीतमें तीन अधो ग्रैवेयक, तीन मध्यम ग्रैवेयक, और तीन उपरिम ग्रैवेयक, इसप्रकार नव ग्रैवेयक हैं। नव ग्रैवेयकके ऊपर नव अनुदिश विमान तथा उनके ऊपर पंच अनुत्तर विमान हैं। इसप्रकार इस ऊर्ध्वलोकमें वैमानिक देवोंका निवास है। सोलह स्वर्गोंमें तो इन्द्र सामानिक पारिषद आदि दश प्रकारकी कल्पना है। और कल्पातीतमें समस्त देवोंमें स्वामीसेवक व्यवहार नहीं हैं। इसलिये अहमिन्द्र हैं। मेरुकी चूलिकासे एक बालके (केशके) अन्तरपर ऋजुविमान है। यहींसे सौधर्म स्वर्गका प्रारंभ है। मेरुतलसे लगाकर डेड़ राजूकी ऊंचाईपर सौधर्म ईशान युगलका अन्त है। उसके ऊपर डेढ़ राजूमें सनत्कुमार माहेन्द्र युगल है। उससे ऊपर आधे आधे राजूमें छह युगल हैं। इसप्रकार छह राजूमें आठ युगल हैं। सौधर्म स्वर्गमें ३२ लाख विमान है। ईशानस्वर्गमें ढाई लाख, सनत्कुमारमें १२ लाख, माहेन्द्रमें ८ लाख, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयुगलमें ४ लाख, लांतवकापिष्टयुगलमें ५० हजार, शुक्र महाशुक्र युगलमें ४० हजार, सतारसहस्रार युगलमें ६ हजार और आनतप्राणत तथा आरण और अच्युत इन चारों स्वर्गोंमें सब मिलकर ७०० विमान हैं।

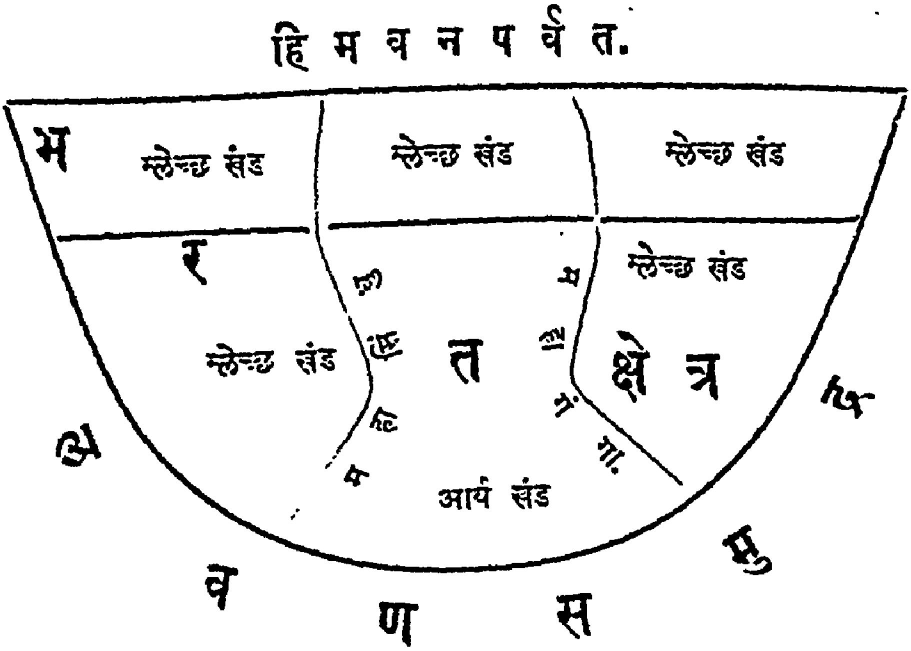

यह सब कथन प्रमाण योजनसे है। एक प्रमाण योजन वर्तमानके २००० कोशके बराबर है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि, आर्यखंड बहुत लम्बा चौड़ा है। चतुर्थकालकी आदिमें इस आर्यखंडमें उपसागरकी उत्पत्ति होती है। जो क्रमसे चारों तरफको फैलकर आर्यखंडके बहु भागको रोक लेता है। वर्तमानके **एशिया योरोप एफ्रिका एमेरिका** और **आस्ट्रेलिया** ये पांचों महाद्वीप इसही आर्यखंडमें हैं। उपसागरने चारों ओर फैलकर ही इनको द्वीपाकार बना दिया है। केवल हिन्दुस्थानकोही आर्यखंड नहीं समझना चाहिये। वर्तमान गंगा सिंधु, महागंगा या महासिंधु नहीं हैं।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें आकाशद्रव्यनिरूपणनामक छट्ठा अध्याय समाप्त हुआ।

सातवां अधिकार।

कालद्रव्य निरूपण।

कालद्रव्यके वर्णन करनेके पहले पहले इस बातका जानना अत्यन्त ही आवश्यक है कि "काल कोई परमार्थ पदार्थ है या नहीं?" जिसके ऊपर ही इस प्रकरणके लिखनेका दारमदार है। जबतक कि मूल पदार्थ रूपी भित्ती—जिसका कि वर्णन करना है— सिद्ध न होगी तबतक उस विषयमें लेखनी उठना आकाश कुसुमकी सुकुमारताके वर्णन करनेके मानिंद निरर्थक है, इसलिये सबसे पहले कालद्रव्यके सद्भावकी ही सिद्धि की जाती है।

"कालोऽत्तिय ववएसो सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो" संसारमें पद दो तरहके होते हैं एक तो वे जिनका कि किसी दूसरे पदोंके साथ समास होता है और दूसरे वे जिनका कि दूसरे पदोंसे समास नहीं होता है। इन दोनों तरहके पदोंमें जो समस्त यानी दूसरे पदोंसे मिलेहुए पद होते हैं, उनका वाच्य (जिसको कि शब्द जतलाते हैं) होताभी है और नहींभी होता है। जैसे राजपुरुषः (राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः) यह राज और पुरुष इन दो शब्दोंसे मिला हुआ एक पद है इसका वाच्य तो है और गगनारविन्दम् (गगन-स्यारविन्दम्=गगनारविन्दम्) यह गगन (आकाश) और अरविन्द (कमल) इन दो शब्दोंसे मिलाहुआ एक पद है इसका वाच्य कोई आकाशका फूल नहीं है। परन्तु जो असमस्त यानी किसी दूसरे पदसे नहीं मिलेहुए स्वतन्त्र पद होते हैं, उनका नियमसे वाच्य होता है। जैसे कि घट, पट इत्यादि पदोंका अर्थ कम्बुग्रीवादिमान्, आतानवितानविशिष्टतन्तु आदि प्रसिद्ध है। उसही तरह 'काल'

यहभी एक असमस्त पद कालके सद्भावको जतलानेवाले है और चूँकि उस कालद्रव्यका कोई कारण नहीं है इसलिये नित्य है।

अनादिनिधनः कालो वर्तनालक्षणो मतः।

लोकमात्रः सुसूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः॥

इस संसारमें सर्वही द्रव्य अपने अपने द्रव्यता गुणकी वजहसे हरएक समयमें अपनी हालतें वदलते रहते हैं। कोईभी द्रव्य सर्वथा क्षणिक व कूटस्थ नित्य नहीं है। क्योंकि पदार्थको निरन्वय विनाश सहित प्रतिक्षणमें नष्ट होनेवाला और कूटस्थकी तरह हमेशा रहनेवाला माननेमें क्रमसे व युगपत् अर्थक्रिया न होनेकी वजहसे परिणमनका अभाव हो जाता है। जिससे कि वस्तुत्वका अभाव आदि अनेक दूषण हो जाते हैं। जो कि यहां विस्तार या पौनरुक्त्य दोकी वजहसे नहीं लिखे जा सकते हैं। सारांश यह है कि अनन्त गुणोंके (जो कि पदार्थोंमें भिन्न भिन्न कार्योंके देखने मालूम होते है) अखंड पिंडको द्रव्य कहते हैं। उन अनन्त गुणोंमें एक द्रव्यत्व गुणभी है जिसकी कि वजहसे यह पदार्थ प्रतिक्षण किसी खास हालतमें नहीं रहता किन्तु प्रतिसमय अपनी हालतें बदलता रहता है। इस तरह अपने अपने. गुणपर्यायोंसे वर्तते हुए पदार्थोंको परिवर्तन करनेमें जैसे कि कुम्हारका चक्र (चाक) कुम्हारके हाथसे घुमाया हुआ उसके हाथ हटानेपरभी अपने आप भ्रमण करता है और उसके भ्रमण करनेमें उसके नीचे गड़ी हुई लोहेकी कीली सहकारी कारण है, उसही तरह सहकारी कारण कालद्रव्य हैं जो कि लोकमात्र हैं, अर्थात् जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतनेही कालद्रव्य हैं और लोकाकाशके वाहर कालद्रव्य नहीं हैं। (शंका)

उस कालको अवसर्पिणी काल कहते हैं। उत्सर्पिणी कालका प्रमाण दश कोड़ाकोड़ी सागर (दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौडे गढ्ढेमें कैचींसे जिसका दूसरा खंड न हो सके ऐसे मेढेके वालोंको भरना, जितने बाल उसमें समावें उनमेंसे एक एक वाल सौ सौ वर्ष वाद निकालना जितने वर्षोंमें वे सब निकल जावैं. उतने वर्षोंके जितने समय (जितकी देरमें मंद गतिसे चला हुआ एक परमाणु दूसरे परमाणुको उल्लंघन करै उसको समय कहते हैं) हों उसको व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहारपल्यसे असंख्यात गुणा उद्धारपल्य होता है उद्धारपल्यसे असंख्यातगुणा अद्धापल्य होता है। दश कोड़ाकोड़ी (एक करोड़को एक करोड़से गुणा करनेपर जो लब्ध हो उसको एक कोड़ाकोड़ी कहते हैं) अद्धापल्योंका एक सागर होता है) है और इसही तरह अवसर्पिणी कालकाभी प्रमाण दश कोड़ाकोड़ी सागर है, इन दोनोंकोही मिलकर एक कल्पकाल कहते हैं। इन दोनोंमेंही प्रत्येकके छह भेद (सुषमासुषमा १ सुषमा २ सुषमा-दुषमा ३ दुषमासुषमा ४ दुषमा ५ दुषमादुषमा ६) हैं। ये कहे हुए भेद अवसर्पिणी कालके जानना। और ठीक इनके उलटे छह भेद (दुषमादुषमा १ दुषमा २ दुषमासुषमा ३ सुषमादुषमा ४ सुषमा ५ सुषमासुषमा ६) उत्सर्पिणी कालके जानना इन छहों नामोंमें समा शब्द समयका वाची है और सु, दु ये दोनों अच्छे व बुरेके कहनेवाले दो उपसर्ग हैं इनकी मिलावट वगैरहसेही ए छह शब्द सार्थक छह कालके वाची हैं।

इन छहों कालमेंसे देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र (उत्तम भोगभूमि) में पहलाकाल, हरि-रम्यकक्षेत्र (मध्यम भोगभूमि) में दूसरा काल, हैमवत-हैरण्यवतक्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) में तीसरा काल, और

विदेहक्षेत्रमें चौथाही काल हमेशा रहता है। इनमें फेरफार होता है। भरत–ऐरावतक्षेत्रमें पडेहुए पांच म्लेच्छखंड और वि पर्वतकी प्रथम कटनी–विद्याधरश्रेणीमें दुषमासुषमाकी आदिसे ले अंतपर्यन्त अवसर्पिणीमें जीवोंकी आयु आदिकी हानि होती है और उत्सर्पिणीमें सुषमादुषमाकी आदिसे लेकर उसहीके जीवोंकी आयु आदिमें वृद्धि होती है। देवगतिमें सुषमादुषमा गतिमें दुषमादुषमा मनुष्यगति तिर्यञ्चगतिमें छहों काल होते हैं परन्तु कुमनुष्य भोगभूमिमें तीसरा और स्वयम्भूरमण दीपके आ और स्वयम्भूरमण समुद्रमें पांचवा काल वर्तता है और अढाई व दो समुद्रोंसे बाहर सर्व द्वीप समुद्रोंमें तीसरा काल–जघन्य भोग-भूमि रहती है। पहिले काल (सुषमासुषमा) का प्रमाण कोडीकोडी सागर है इतने दिनोंतक उत्तम भोगभूमि रहती है। उस समयके मनुष्य व तिर्यञ्चोंकी आयु तीन पल्य, शरीरकी ऊंचाई तीन कोश, शरीरका वर्ण सुवर्णवर्ण होता है और वदरीफल यानी बैर प्रमाण सुस्वादु आहार तीन दिनके अंतरसे करते हैं। दूसरे काल (सुषमा) का प्रमाण तीन कोडाकोडी सागर है इतने दिनोंतक मध्यम भोगभूमि रहती है। उस समयके मनुष्य व तिर्यञ्चोंकी आयु २ पल्य शरीरकी ऊंचाई २ कोश शरीरका वर्ण शुक्ल होता है और बहेडाके बराबर सुस्वादु आहार दो दिनके अंतरसे करते हैं। तीसरे काल (सुषमा दुषमा) का प्रमाण १ कोडाकोडी सागर है। इतने दिनोंतक जघन्यभोगभूमि रहती है। उस समयके मनुष्य व तिर्यञ्चोंकी आयु १ पल्य, शरीरकी ऊंचाई १ कोश, शरीरका वर्ण हरित होता है और आंवलेके बराबर सुस्वादु आहार १ दिनके अंतरसे करते हैं। इन तीनों कालोंमें रहनेवाले जीव भोगभूमिया कहलाते हैं। इन तीनोंही कालमें पैदा हुए

जुगलिया (यानी वहां पुरुष स्त्रीका युगल—जोडा पैदा होता है इस लिये उनको जुगलिया कहते हैं) उत्पन्न होनेके बाद क्रमसे सात सात दिनोंमें यथाक्रम अंगूठेका चूसना—पेटके सहारे सरकना—पावोंके घटनेके सहारे रेंगना—अच्छीतरह चलना फिरना—कला गुणको ग्रहण करना—यौवन प्राप्त करना—सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेकी शक्ति इन सात अवस्थाओंमें ४९ दिन व्यतीत कर दिव्य भोगोंको भोगते हैं जो कि उनको पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे दश प्रकारके (मद्यांग, तूर्यांग, भूषणांग, पानांग, आहारांग, पुष्पांग, गृहांग, ज्योतिरंग, वस्त्रांग, दीपांग) कल्पवृक्षोंके द्वारा प्राप्त होते हैं। वे सबहीके सब वज्र-वृषभनाराच संहननवाले महाबली धैर्यशाली पराक्रमी होते हैं। उनको अपनी आयुभर कभी भी रोग, बुढापा, थकावट, पीडा वगैरह नहीं होती है। वे आपसमें (स्त्री पुरुषमें पुरुष स्त्रीमें) अनुरागसहित होते हुए कभी भी आधि व व्याधिका नामभी नहीं जानते हैं। वे स्वभाव सुन्दर, मनोज्ञ शरीरके धारण करनेवाले, नाममात्रको मुकुट, कुंडल, हार, मेखला, कटक, अंगद, केयूर आदि अनेक सुंदर सुंदर आभूषणोंसे विभूषित होते हुए चिरकालपर्यन्त मनोऽभिलषित स्वर्गीय आनन्दका अनुभव करते रहते हैं।

इस प्रकार बहुत कालतक अपने पुण्योदयसे प्राप्त हुए सुखोंको भोगकर अपने आयुके अंतमें पुरुष तो छींक लेते लेते और स्त्री जिभाई लेते लेते शरद ऋतुके बादलोंकी भात विलीन होकर शरीरको छोडकर देवगतिको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार कालचक्रका परिवर्तन होते होते तीसरे कालमें जब पल्यका आठवाँ हिस्सा बाकी रहा तब कालचक्रकी फिरन व जीवोंके क्षीण हीन पुण्यी होनेकी बजहसे धीरेधीरे कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे शरीरकी कांति फीकी पडने लगी।

कल्पवृक्ष थोडे फल देने लगे और उन्हींमेंके ज्योतिरंग जातिके कल्प-वृक्षोंके मंदज्योति होनेकी वजहसे सायंकालके समय सूर्य चन्द्रमा व तारागण दीखने लगे। पुनः क्रमसे जो भोले जन्तु पहले मानिन्द शिशुगणके प्यारे थे और इधर उधर वन उपवन आदिमें क्रीडा वगैरह करते थे, उन्हीं रीछ भेडिया व्याघ्रोंके द्वारा सताया जाना, सन्तानका मुख दीखना (पहले नहीं दीखता था क्योंकि सन्तानके उत्पन्न होते ही पितामाता स्वर्ग सिधार जाते थे) और फिर उनका कुछ कालतक जीना फिर जेरसे सन्तान होना आदि अनोखी अनोखी और दिलको दहेलने व चोट पहुंचानेवाली बातें होने लगी, सबही घबडाने लगे, एक तरह भोगभूमिकी कायाही पलटने लगी। ऐसेही सयममें क्रमसे प्रतिश्रुति आदि नाभिरायपर्यन्त १४ कुलकर पैदा हुए जो कि सम्यग्दृष्टी क्षत्रिय कुलोत्पन्न (आगामी कालकी अपेक्षा अर्थात् जब वर्णव्यवस्था प्रारम्भ होगी उसमें क्षत्रियोंका जो भी कुलाचार वगैरह होगा उसही तरहके ये इसही समयमें थे इसलिये इनको क्षत्रिय कहा) पैदा हुए जिनमेंसे कोई अवधि ज्ञानी और कितनेही जातिस्मरण ज्ञानवाले हुए उन्होंनेही इन विचारोंको (जिन्हों-की राज्यपदसे च्युत होकर दीन बनानेके हुक्म सुननेसे जो पुरुषकी हालत होती है हो रही थी) यथायोग्य सब भयके दूर करनेवाले उपाय व आनेवाले जमानेके सब समाचारोंको बतला जतलाकर निराकुल किये और इस तरहके भयानक आपत्तिरूप समुद्रमें गोता लगानेवालोंको हस्तावलम्बन देकर महान् उपकार किया। इस प्रकार होते होते अंतिम नाभिराय कुलकरके स्वामी—ऋषभनाथजीने जन्म लिया जो कि जन्मसेही तीन (मति, श्रुत, अवधि) ज्ञानके धारी धैर्यशाली पराक्रमी सुडौल वज्रवृषभनाराचसंहननके धारी प्रियहित

-मधुरालापी सर्व सुलक्षणसम्पन्न अतुलबली थे। इनके शरीरकी ऊंचाई ५०० धनुष और आयु ८४ लाख पूर्व (पूर्वांगं वर्ष लक्षाणमशी तिश्चतुरुत्तरा तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं, अर्थात् ८४०००० लाख वर्षोंका एक पूर्वांग होता है और इसहीके वर्ग ८४००००×८४०००० =७०५६०००००००००० को एक पूर्व कहते हैं) की थी इन्होंने गृहस्थाश्रमकी अवस्थामें घबड़ाए हुए (जो कि पहले सर्व सुख सम्पन्न थे) प्राणियोंको सर्व तरह अस्वासन देकर कर्मभूमिकी रचना यानी पुर, ग्राम, पट्टणादि और लौकिक शास्त्र, लोक व्यवहार, दयामयीधर्म, असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, सेवा, शिल्पादि षट्-कर्मोंसे आजीवका करना इत्यादि विधिवतलाई इसीलिये इनका नाम आदिब्रह्मविधाता है और कर्मभूमिकी सृष्टि रची इसी लिये सृष्टाभी कहते हैं। फिर इन्होंने इस असार संसारकी असारता जान, इससे ममत्व त्याग, सर्व परिग्रहारम्भसे मोहजाल टाल, केवल ज्ञान प्राप्तकर दिव्यध्वनि द्वारा अनादिकालसे संसारमें स्वस्वरुपको भूलकर भटकते हुए प्राणियोंको सच्चे सुखके मार्गका उपदेश देकर जगत्पूज्यपदकी प्राप्ति की। इसही तरह बीचर्बीचमें हजारों वर्षोंके अंतरसे क्रमसे अन्य २३ तीर्थंकरोंने इस संसाररूपी मरुस्थलमें विषयाशारूपी मरीचिकासे भ्रमते हुए जीवमृगोंको धर्मामृतकी वर्षाकर संतृप्त किया। सबसे अंतमे होनेवाले स्वामी वर्धमान--महावीरने भी इसही तरह संसाररूपी विकट अटवीमें कर्मचोरोंके द्वारा जिनका ज्ञानधन लुट गया ऐसे विचारे इधरउधर भटकते हुए प्राणियोंको तत्वोपदेश देकर सुमार्गमें लगाकर सर्वदाके लिये मोक्ष पदवीमें आसन जमाया। इन चौवीस तीर्थंकरोंके मध्यमें १२ चक्रवर्ती ९ नारायण ९ प्रतिनारायण ९ बलभद्र ११ रुद्र, ९ नारद आदि पदवीधर मनुष्य होते हैं।

और पर्वतके आसपास रहनेवाले जीव अपनेही आप घुस जाते हैं अथवा दयावान् देव और विद्याधर मनुष्य युगल आदि अनेक जीवोंको उठाकर विजयार्ध पर्वतकी गुफा वगैरह निर्वाध स्थानोंमें ले जाते हैं। इस छट्टे कालके अंतमें सात सात दिनपर्यन्त क्रमसे १ पवन २ हिम ३ क्षाररस ४ विष ५ कठोर अग्नि ६ धूलि ७ धुवाँ इस प्रकार ४९ दिनमें सात वृष्टि होती हैं जिससे और बचे बचाये विचारे मनुष्यादिक जीव नष्ट हो जाते हैं। तथा विष और अग्निकी वर्षासे पृथ्वी एक योजन नीचेतक चूरचूर हो जाती है। इसहीका नाम महा प्रलय है। इतना विशेष जानना कि यह महाप्रलय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके आर्यखण्डोंमेंही होता है अन्यत्र नहीं होता है। अब आगे उत्सर्पिणी कालका प्रवेशका अनुक्रम कहते हैं।

उत्सर्पिणीके दुःषमा दुःषमा नामक प्रथम कालमें सबसे पहले सात दिन जलवृष्टि, सात दिन दुग्धवृष्टि, सात दित घृतवृष्टि और सात दिनतक अमृतवृष्टि होती है जिससे पृथ्वीमें पहले अग्नि आदिककी वृष्टिसे जो उष्णता हुई थी वह चली जाती है और पृथ्वी रसीली तथा चिकनी हो जाती है और जलादिककी वृष्टिसे नाना प्रकारकी लता वेल जडीबूटी आदि औषधि तथा गुल्म वृक्षादिक वनस्पतिसे हरी भरी हो जाती है। इस समय पहले जो प्राणी विजयार्ध पर्वत तथा गंगा सिन्धु नदीकी वेदियोंके विलोंमें घुस गए थे वे इस पृथिवीकी शीतलता सुगंधके निमित्तसे पृथ्वीपर आकर इधर उधर वस जाते हैं। इस कालमेंभी मनुष्य धर्म रहित नंगेही रहते

हैं और मिट्टी वगैरह खाया करते हैं । इस कालमें जीवोंकी आयु कायादिक क्रमसे वढते हैं । इसके पीछे उत्सर्पिणीका दुःषमा नामका काल प्रवर्तता है। इस कालमें जव एक हजार वर्ष वाकी रह जाते हैं तव कनक, कनकप्रभ इत्यादि १६ कुलकर होते हैं ये कुलकर मनुष्योंको क्षत्रिय आदिक कुलोंके आचार तथा अग्निसे अन्नादिक पकानेकी विधि वतलाते हैं उसके पीछे दुःषमा दुःषमा नामका तीसरा काल प्रवर्तता है जिसमें त्रेसठशलाका पुरुष होते हैं । उत्सर्पिणीमें केवल इसही कालमें मोक्ष होता है । तत्पश्चात् चौथे, पांचवें और छठे कालमें भोगभूमि हैं जिनमें आयुकायादिक क्रमसे वढते जाते हैं । भावार्थ—अवसर्पिणीके १।२।३।४।५।६ कालकी रचना उत्सर्पिणी ६।५।४।३।२।१ कालकी रचनाके समान है । इतना विशेष जानना कि आयु काय आदिकी क्रमसे अवसर्पिणी कालमें तो हानि होती है और उत्सर्पिणी कालमें वृद्धि होती है । इसप्रकार यह कालचक्र निरंतरही घूमता रहता है जिससे कि पदार्थोंमें प्रतिसमय परिणमन होता रहता है यानी पदार्थ अपनी हालतें वदलते रहते हैं । इसलिये नहीं मालूम कि इस समयसे दूसरे समयमें क्या होनेवाला है । गया हुआ वक्त फिर नहीं मिल सकता है । इसलिये हमेशाही अपने कर्तव्यकर्मको वहुतही होशियारीके साथ जल्दी करना चाहिये ।

इस प्रकार जैनसिद्धान्तदर्पणग्रंथमें कालद्रव्यनिरूपणनामक सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।

आठवां अधिकार ।

सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा ।

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानं ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

अनेक मतोंका यह सिद्धान्त है कि इस सृष्टिका कर्ता हर्ता कोई ईश्वर अवश्य है । अतः इस विषयकी न्यायसे मीमांसा की जाती है । पूर्ण आशा, तथा दृढ विश्वास है कि सज्जनगण पक्षपातरहित हो इसपर समुचित विचारकर कल्याणमार्गके अन्वेषी होवेंगे ।

प्रथमही जैनमतका इस विषयमें क्या सिद्धान्त है इसका विवेचन करके सृष्टिकर्तृत्वपर मीमांसा प्रारम्भ की जायगी ।

प्रश्न १—लोकका लक्षण क्या है ?

उत्तर—"लोक्यन्ते जीवादयो यस्मिन् स लोकः" अर्थात् जितने आकाशमें जीवादिक द्रव्य देखनेमें आते हैं, उसको लोक कहते हैं ।

प्रश्न २—द्रव्यका सामान्य और विशेष लक्षण क्या है ?

उत्तर—जो सत् अर्थात् उत्पत्ति विनाश और स्थिति करके सहित हो उसे द्रव्य कहते हैं, भावार्थ-जो एक अवस्थाको छोडकर दूसरी अवस्थाको सदाकाल प्राप्त होता रहै उसे द्रव्य कहते हैं । उस द्रव्यकी अवस्था दो प्रकार की है, एक सहभावी और दूसरी क्रमभावी । सहभावी अवस्थाको गुण कहते हैं क्रमभावीको पर्याय कहते हैं । और इसही कारण गुणपर्य्यायवानपणाभी द्रव्यका लक्षण है । उस द्रव्यके ६ भेद हैं—१ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म, ५ आकाश, ६ काल । १ जीव उसको कहते हैं जो

भी मित्रका पुत्र है, इसलिये श्यामवर्ण होगा. परन्तु मित्रपुत्र यदि गौरवर्ण भी हो जाय तो उसमें कोई बाधक नहीं हैं. इस ही प्रकार यदि कार्य, कर्त्ताके विना भी होजाय तो उसमें बाधक कौन?

प्रश्न १३—यदि कर्त्ताके बिना कार्य हो जायगा तो न्यायका यह वाक्य कि कारणके विना कार्य नहीं होता है, मिथ्या ठहरेगा।

उ०—मिथ्या क्यों ठहरेगा? कार्य कारणके विना नहीं होता यह ठीक है परंतु यदि कोई दूसरा ही पदार्थ कारण हुवा तो क्या हर्ज है? इसमें क्या प्रमाण है कि वह कारण ईश्वर ही है।

प्रश्न १४—प्रत्येक कार्यके वास्ते कोई बुद्धिमान निमित्त कारण अवश्य होना चाहिये. बुद्धिमान पदार्थ जगतमें या तो जीव है या ईश्वर है परंतु किसी जीवकी ऐसी सामर्थ्य नहीं दीखती कि ऐसे लोकको बनावे. इसलिये लोकका बुद्धिमान निमित्त कारण ईश्वर ही है।

उ०—यदि लोकरूपी कार्यका निमित्त कारण कोई जड़ पदार्थ ही हो तो क्या हानि है?

प्रश्न १५—जड पदार्थके निमित्त कारण होनेसे कार्यकी सुव्यवस्था नहीं होती. लोक एक सुव्यवस्थित कार्य है. इसलिये निमित्त कारण बुद्धिमानका होना आवश्यक है।

उ०—यह लोक सुव्यवस्थित ही नहीं है. क्योंकि पृथ्वी कहीं उंची है कहीं नीची है. सुवर्ण सुगंध रहित है. इक्षु फल रहित है. चंदन पुष्प रहित है. विद्वान् निर्धन और अल्पायु होते हैं. यदि ईश्वर इस लोकका कर्त्ता होता तो ऐसी दुर्व्यवस्था क्यों होती? यह

कार्य तो मूर्खों सरीखे दीखते हैं. क्योंकि नीतिकारने भी ऐसा ही कहा है कि–"गंधः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे नाकारि पुष्पं खलु चंदनेषु ॥ विद्वान् धनाढ्यो न तु दीर्घजीवी धातुः पुरा कोपि न बुद्धिदोभूत् ॥ १ ॥" अथवा जो ईश्वर सरीखा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और दयालु इस लोकका कर्ता होता, तो जगत्में कोई पाप नहीं होता। क्योंकि जिस समय कोई मनुष्य कुछ भी पाप करनेको उद्यमी होता है, तो ईश्वरको यह बात पहिलेहीसे मालूम हो जाती है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। यदि मालूम नहीं होती है तो ईश्वर सर्वज्ञ नहीं ठहरेगा. फिर ईश्वर मनुष्यको पाप करनेसे रोक भी सक्ता है. क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है. यदि नहीं रोक सक्ता है तो वह सर्वशक्तिमान् नहीं ठहर सकता, यदि कहोगे कि "यद्यपि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है परंतु उसको क्या गर्ज है कि वह उसको पाप करनेसे रोके ? तो वह दयालु भी है कि जिससे उसका रोकना आवश्यक ठहरा. जैसे कि एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को मारनेके लिये चला और शहरके न्यायवान् राजाको यदि यह बात मालूम हो जाय तो उसका कर्तव्य यह है कि घातक को रोककर खून न होने देवे, न कि खून होनेपर घातक को दंड दे अथवा किसीका बालक भंगके नशेमें किसी अंधकूपमें गिरता हो तो उसके साथी पिताका फर्ज है कि उसको कूपमें न गिरने दे. न कि उसको कूपमें गिरने पर निकाल कर दंड दे. ठीक ऐसी ही अवस्था ईश्वर और मनुष्यके साथ है. ईश्वरका कर्तव्य है कि मनुष्यको पाप न करने दे. न कि उसके पाप करने पर उसको दंड दे. इसलिये यदि ईश्वर सरीखा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और दयालु इस लोकका कर्ता होता तो लोकमें किसी भी प्रकारके पापकी प्रवृत्ति नहिं होती परन्तु ऐसा

दीखता नहीं है. इस कारण इस लोकका कर्ता कोई ईश्वर नहीं है. वस ! इससे सिद्ध हुवा कि लोकरूप कार्यका कोई बुद्धिमान् निमित्त कारण नहीं है. अथवा ईश्वर और सृष्टिमें कार्य कारण सम्बन्ध ही नहीं वनता क्योंकि व्यापकका अनुपलंभ है. भावार्थ—न्यायशास्त्रका यह वाक्य है कि "अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः" अर्थात् कार्यकारणभाव और अन्वयव्यतिरेकभाव इन दोनोंमें गम्य गमक याने व्याप्य व्यापक संवंध है. अग्नि और धूम इनमें व्याप्य व्यापक संवंध है. अग्नि व्यापक है और धूम व्याप्य है. जहां धूम होगा वहां अग्नि नियम करके होगी। परन्तु जहां अग्नि है वहां धूम हो भी और नहीं भी हो. जैसे तप्त लोहेके गोलेमें अग्नि तो है परन्तु धूम नहीं है. भावार्थ कहनेका यह है कि जहां व्याप्य होता है, वहां व्यापक अवश्य होता है. परन्तु जहां व्यापक होता है, वहां व्याप्य होता भी है और नहीं भी होता है. सो यहांपर कार्यकारणभाव व्याप्य है और अन्वयव्यतिरेकभाव व्यापक है. भावार्थ—जहां कार्यकारणभाव होगा वहां अन्वयव्यतिरेक अवश्य होगा परन्तु जहां अन्वयव्यतिरेकभाव है, वहां कार्य-कारण हो भी और नहीं भी हो. कार्यके सद्भावमें कारणके सद्भावको अन्वय कहते हैं. जैसे—जहां जहां धूम होता है, वहां वहां अग्नि अवश्य होती है और कारणके अभावमें कार्यके अभावको व्यतिरेक कहते हैं, जैसे जहां जहां अग्नि नहीं है वहां वहां धूम भी नहीं है। सो जो ईश्वर और लोकमें कार्यकारणसंवंध है तो उनमें अन्वयव्यतिरेक अवश्य होना चाहिये। परंतु ईश्वरका लोकके साथ व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता क्योंकि व्यतिरेक दो प्रकारका है। एक कालव्यतिरेक दूसरा क्षेत्रव्यतिरेक। सो ईश्वरमें दोनों प्रकारके व्यति-

किसी स्थानपर एक गड्ढा था उसको कुछ आदमियोंने भरकर नके बराबर कर दिया. तो जिस मनुष्यने उस गड्ढेको भरते देखा था उसके यह बुद्धि उत्पन्न नहीं होती कि यह ˜ किया हुआ है. अब यहांपर फिर कोई शंका करे कि, तुम्हारा सत्प्रतिपक्ष है. क्योंकि इस अनुमानसे बाधित विषय है "त॰ पृथ्वी आदिक किसी बुद्धिमान्‌की बनाई हुई नहीं है, क्योंकि उस बनानेवाला किसीने देखा नहीं. जिस जिसका बनानेवाला किस नहीं देखा उसका बनानेवाला कोई बुद्धिमान कारण नहीं ` जैसे आकाशादिक" सो यहभी समीचीन नहीं है. क्योंकि जो दृश्य होता है, उसीकी अनुपलब्धिसे उसके अभावकी सिद्धि हे है. परन्तु ईश्वर तो दृश्य नहीं है इसलिये उसके अभावकी सि नहीं हो सक्ती. जो अदृश्य पदार्थकी अनुपलब्धिसेही उसके वकी सिद्धि करोगे तो, किसी अदृश्य पिशाचके किये हुए का पिशाचकी अनुपलब्धिसे पिशाचके अभावका प्रसंग आवेगा." प्रकारसे कर्त्तावादीने अपने पक्षका मंडन किया. अब इसका किया जाता है ।

कर्तृत्त्ववादके पूर्वपक्षका खण्डन.

यहांपर जो "क्षित्यादिकं बुद्धिमत्कर्तृजन्यं कार्यत्वात्" अनुमानद्वारा कार्यत्वरूप हेतुसे पृथिव्यादिको बुद्धिमत्कर्त्तासे जन्य सिद्ध किया है सो इस कार्यत्वरूप हेतुके चार अर्थ हो सकते हैं. एक तो कार्यत्त्व अर्थात् सावयवत्त्व दूसरा पूर्वमें असत्पदार्थ स्वकारणसत्तासमवाय, तीसरा "कृत अर्थात् किया गया" ऐसी बुद्धि होनेका विषय होना, अथवा चतुर्थ विकारिपना. इन चार अर्थोंमेंसे यदि सावयवत्वरूप अर्थ माना जावे तो इसकेभी

अर्थ हो सकते हैं. सावयवत्व अर्थात् अवयवोंमें वर्तमानत्व १, अवयवोंसे बनाया गया २, प्रदेशिपना ३ अथवा सावयव ऐसी बुद्धिका विषय होना ४.

इन चार पक्षोंमें आद्यपक्ष अर्थात् अवयवोंमें वर्तमान होना माना जावे तो अवयवोंमें रहनेवाली जो अवयवत्व नामक (नैयायिकों कर मानी हुई) जाति उससे यह हेतु अनैकान्तिकनामक हेत्वाऽभास हो जायगा. क्योंकि, अवयवत्व जाति अवयवोंमें रहनेपरभी स्वयं अवयवरहित और अकार्य है. अर्थात् उस हेतुका विपक्षमें पाये जानेका नाम अनैकान्तिक दोष है. इसी प्रकार यहभी कर्तृविशेषजन्यत्वादि साध्यका विपक्ष जो नित्य जातिविशेष उसमें वर्तमान होनेसे अनैकान्तिक दोषयुक्त सिद्ध हुआ. इससे यह हेतु कर्तृविशेषजन्यत्त्व साधनेमें आदरणीय नहीं हो सकता. (**प्रथम पक्षका प्रथम भेद**) इसही प्रकार सावयवत्व अर्थात् प्रथम पक्षका द्वितीय भेद अर्थात् अवयवोंसे बना हुआ, यह अर्थ स्वीकार किया जावे तो कार्यत्वरूप हेतु साध्यसम नामक दोष सहित मानना पड़ेगा। (यहभी एक पूर्ववत् हेतुका दोष है. जिससे कि हेतु साध्यसदृश सिद्ध होनेसे अपने कर्तृविशेषजन्यत्त्वरूप साध्यको सिद्ध नहीं कर सकता.) क्योंकि पृथिव्यादिकोंमें कार्यत्व अर्थात् जन्यत्त्व साध्य, और परमाण्वादि पृथिव्यादिकोंके अवयवोंसे बनाया गया रूप हेतु दोनोंही सम हैं. और साधन यदि साध्यके समान हो तो कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता. (**कार्यत्व हेतुके प्रथमपक्षका द्वितीय भेद**) प्रथमपक्षका तीसरा भेद अर्थात् प्रदेशवत्त्व माननेसेभी कार्यत्व हेतुमें आकाशके साथ अनैकान्तिक दोष आता है क्योंकि, आकाश प्रदेशवान् होकरभी अकार्य है. इसी प्रकार प्रथम पक्षके चतुर्थ भेदमें

भी आकाशके साथ दोष आता है क्योंकि यह "सावयव" ऐसी बुद्धिका विषय होता है. यदि आकाशको निरवयव माना जावे तो इसमें व्यापित्व धर्म नहीं रह सकता है, क्योंकि, जो वस्तु निरवयव होती है वह व्यापी नहीं हो सकती तथा जो वस्तु व्यापी होती है वह निरवयव नहीं हो सकती. क्योंकि, ये दोनोंही धर्म परस्पर विरुद्ध हैं. इसका दृष्टान्त परमाणु निरवयव है. परमाणु निरवयव है इसीसे वह व्यापी नहीं है. अतःआकाश "व्यापी" ऐसा व्यवहार होनेसे निरवयव नहीं है किन्तु सावयवही है. अतएव तृतीय तथा चतुर्थ पक्ष माननेमें आकाशके साथ अनैकान्तिक दोष, हेतुमें आता है. इस प्रकार प्रथम पक्षके चारों अर्थोंमें दोष होनेसे चारोंही पक्ष अनादरणीय हैं.

इस दोषके दूर करनेका यदि द्वितीय पक्ष अर्थात् "प्राक् असत् पदार्थके स्वकारणसत्तासमवायरूप कार्यत्वको हेतु माना जावे तो स्वकारणसत्तासमवायको नित्य होनेसे तथा कर्तृविशेषजन्यत्वादि" साध्यके साथ सर्वथा न रहनेसे यह हेतु असंभवी है. यदि पृथिव्यादि कार्योंके साथ इसका रहना मान ही लिया जावे तो पृथिव्यादि कार्यको भी इसी समान नित्य होनेसे बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्त्व किसमें सिद्ध होगा ? क्योंकि, नित्य पदार्थोंमें जन्यपना असंभव है. तथा कार्यमात्रको पक्ष होनेसे पक्षान्तःपाति जो योगियोंके अशेष कर्मका क्षय उसमें कार्यत्वरूप हेतु नहीं घटित होनेसे इस हेतुमें भागासिद्ध भी दोष है. क्योंकि, कर्मके क्षयको प्रध्वंसाभावरूप होनेसे स्वकारणसत्तासमवाय उसमें सम्भव नहीं हो सकता. क्योंकि, स्वकारणसत्तासमवायकी सत्ता भाव पदार्थहीमें हैं । यदि "किया हुआ है" इस प्रकारकी बुद्धिका जो विषय हो वह कार्यत्व है ऐसा कहते हो

सत्य है यह पाठकोंकी बुद्धिपर निर्भर करते हैं । ऐसा सकता कि, जगत्में यह स्वभाव नहीं हो सके और ईश्वरमें हो सके । यदि यह स्वभावही है तो कौन किसमें रोक (तदुक्तं स्वभावोऽतर्कगोचरः) । इस प्रकार कार्यत्व हेतुको विचारनेपरभी बुद्धिमान् ईश्वरको कर्त्ता मना नहीं सकता प्रकार सन्निवेष विशेष अचेतनोपादानत्व अभूत्वाभावित्व, अन्यभी हेतु आक्षेपसमाधान समान होनेसे ईश्वरको कर्त्ता ि कर सकते हैं ।

क्षित्यादिकोंको बुद्धिमत्कर्तासे जन्य बनानेके लिये बतलाये हेतुओंमें पूर्वोक्त दोषोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारभी दोषोंकी हो सकती है तथाहि, पूर्वोक्त हेतु कुलालादि दृष्टान्तोंसे सशरीर र्वज्ञ असर्वकर्तृत्व आदि विरुद्धसाधक होनेसे विरुद्ध हैं । यदि अनुमानमेंभी कहा जाय कि, इतने विशेष धर्मोंकी समानता ि पर वन्हिकाभी अनुमान नहीं बन सकेगा सो यह कहना अनुमानमें दोषोत्पादक नहीं, क्योंकि वन्हिविशेष महानसीय वनोत्पन्न तृणोत्पन्न तथा पर्णोत्पन्न आदि सभी वन्हि कहींपर होनेसे सर्व वन्हिमात्रमें धूमको व्याप्त निश्चय करनेसे धूम सामान्यवन्हिका अनुमापक हो सकता है तथा सर्व कार्योंमें मत्कर्तृता उपलब्ध नहीं होती जिससे कि, कार्यत्वहेतुको याव विशेषसे व्याप्त मानकर कार्यत्वहेतुकी बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्वके व्याप्ति मान सकें । यदि कहो कि, सर्व जगतही उपलब्ध है उसका बुद्धिमत्कर्तासे उत्पन्न होना कैसे उपलब्ध कर सकते अतएव विना अवधारण कियेभी कहींपर कार्यको कर्तासे देखकर सर्वत्र कार्यत्वहेतुकी बुद्धिमत्कर्तृजन्यताके साथ व्याप्ति